महात्मा गाँधी एवं स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों

का महत्व

अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा

सम्बद्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

एम0 एड्0 उपाधि

की आंशिक पूर्ति हेतु प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबन्ध

(2009-2010)

निर्देशक
डॉ. अमरनाथ दत्त गिरि
(एसोसिएट प्रोफेसर)
शिक्षक शिक्षा विभाग

शोधकर्ती
रश्मि
(एम. एस. सी., बी. एड.)
एम एड. (शोध छात्रा)

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज
अतर्रा, (बाँदा)

महात्मा गाँधी एवं स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों

का महत्व

अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा

सम्बद्ध बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी

एम0 एड्0 उपाधि

की आंशिक पूर्ति हेतु प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबन्ध

(2009-2010)

निर्देशक
डॉ. अमरनाथ दत्त गिरि
(एसोसिएट प्रोफेसर)
शिक्षक शिक्षा विभाग

शोधकर्ती
रश्मि
(एम. एस. सी., बी. एड.)
एम एड. (शोध छात्रा)

अतर्रा पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज
अतर्रा, (बाँदा)

घोषणा-पत्र

मैं रश्मि यह घोषणा करती हूँ कि प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध शीर्षक मेरी स्वयं की कृति है। इस शोध कार्य को इसके पूर्व न तो किसी के द्वारा किया ही गया है और न ही प्रस्तुत किया गया है। मैंने यह शोध कार्य निर्देशक डॉ0 अमरनाथ दत्त गिरि के सुयोग्य पथ-प्रदर्शन में जिन पुस्तकों से इस लघु शोध ग्रन्थ की रचना में सहायता ली है उन सभी पुस्तकों का उल्लेख सहायक पुस्तकों की सूची में कर रही हूँ।

दिनांक : 24.09.2010

शोधछात्रा

रश्मि

रश्मि

(एम. एस. सी., बी. एड.)

एम. एड. (छात्रा)

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि एम0 एड0 छात्रा रश्मि मेरे निर्देशन में सम्पूर्ण सत्र भर कार्य करती रहीं और प्रस्तुत शोध ग्रन्थ उनका मौलिक कार्य है, जो कि पूर्णरूपेण उन्हीं के परिश्रम का फल है।

मैं इनके उज्जवल भविष्य की कामना करता हूँ।

स्थान : अतर्रा, बाँदा

दिनांक : 25.09.2010

निर्देशक
(डॉ0 अमरनाथ दत्त गिरि)
एसोसिएट प्रोफेसर
शिक्षक शिक्षा विभाग

आत्म-निवेदन

प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध शीर्षक **''गाँधी व स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक विचारों का महत्व''** प्रस्तुत करते हुए मुझे अत्यन्त हर्ष का अनुभव हो रहा है। प्रस्तुत शोध केवल मेरे ही प्रयास का फल नहीं है बल्कि कई श्रद्धापात्रों, विद्वानों एवं गुरूजनों के भरसक प्रयास का परिणाम है। मैं उन सभी व्यक्तियों का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने इस कार्य में अपना अमूल्य समय निकाल कर मुझे सहयोग प्रदान किया।

मैं अपने निर्देशक डॉ0 अमरनाथ दत्त गिरि की अत्यन्त ऋणी हूँ जिनके सफल निर्देशन में इस शोध का कार्य सम्पन्न हुआ तथा जिन्होंने यथा समय उचित मार्ग दर्शन एवं प्रोत्साहन देकर अत्यन्त सहृदयता के साथ प्रस्तुत शोध को सुधारकर उचित रूप प्रदान किया।

मैं अपने महाविद्यालय के विभागाध्यक्ष प्रा0 पी0 एस0 सेंगर की आभारी हूँ जिन्होंने इस शोध कार्य को प्रस्तुत करने के लिये सहयोग एवं अनुमति प्रदान की। मैं अपने विभाग के समस्त प्राध्यापकों की विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने हर समस्या के समाधान के लिये उपलब्ध होकर समस्या के परिमार्जन एवं निराकरण में सहायता प्रदान की।

सर्वप्रथम मैं अपने माता-पिता को नमन करती हूँ जिन्होंने मुझे इस योग्य बनाया। अन्त में मैं उन विद्वानों एवं लेखकों का आभार प्रकट करती हूँ जिनकी अमूल्य कृतियों का प्रयोग प्रस्तुत लघु शोध में किया गया है।

शोध छात्रा

रश्मि

रश्मि

(एम0 एस. सी., बी. एड.)

एम. एड. (छात्रा)

विषय-सूची

अध्याय	विषय
प्रथम अध्याय	
	वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता
	वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य
	वर्तमान अध्ययन की विधि
द्वितीय अध्याय	
	शिक्षा का अर्थ
	दर्शन का अर्थ
	शिक्षा दर्शन का सम्बन्ध
	शिक्षा दर्शन की आवश्यकता
तृतीय अध्याय	
	गाँधी जी का जीवन परिचय
	गाँधी जी की दार्शनिक विचारधारा

सत्य

अहिंसा

आत्मा

प्रकृति जगत

जीवन का लक्ष्य मुक्ति

गाँधी जी की शैक्षणिक विचारधारा

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा का उद्देश्य

शिक्षा का पाठ्यक्रम

शिक्षण विधि

शिक्षक, शिक्षार्थी, शिक्षालय

अनुशासन

स्त्री एवं प्रौढ़ शिक्षा

सह शिक्षा एवं जन शिक्षा

धर्म शिक्षा

वर्धा योजना

चतुर्थ अध्याय स्वामी विवेकानन्द का जीवन परिचय

स्वामी विवेकानन्द जी की दार्शनिक विचारधारा

सत्य

जगत

जीवन का अन्तिम लक्ष्य

स्वामी विवेकानन्द की शैक्षिक विचारधारा

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा का उद्देश्य

शिक्षा का पाठ्यक्रम

शिक्षण पद्धतियाँ

शिक्षक, शिक्षार्थी, विद्यालय

अनुशासन

स्त्री एवं प्रौढ़ शिक्षा

धार्मिक शिक्षा

पंचम अध्याय

निष्कर्ष

सुझाव

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता

इस धरती पर अनेक महापुरूषों ने जन्म लेकर मानव समूह को अपने कृतित्व के द्वारा मार्ग प्रदर्शन किया। आज मानव अतीत के आदर्श और वर्तमान के यथार्थ से उद्भूत द्वन्द्व मानव जीवन के चर्तुमुखी क्षेत्र को प्रभावित करता हुआ किसी लय निर्धारण में असंगारी का सूत्रपात करता हुआ प्रतीत होता है। वैदिक जटिलताओं के बन्धनों की दृढ़ता को आधुनिक युग की मुक्तिवादी विचारधारा ने पर्याप्त सीमा तक शिथिल कर दिया है। शंकराचार्य जैसे दार्शनिकों का यह उद्घोष-'ब्रहम् सत्यम् जगति मिथ्या' आज की जीवन संघर्षतम् विधियों में निरर्थक एवं बेसुरी ध्वनि से अधिक कुछ नहीं लगता। बौद्धिक मानसिकता सहज ही किसी बात को मानने के लिए तैयार नहीं है। किसी पूर्व निर्धारित सत्य अथवा मान्यता को ज्यों का त्यों स्वीकार करके तद्नुरूप आचरण करना बुद्धिवादी चेतना के लिए जीवित मक्खी निगल जाना है। अदृश्य को सत्य तथा दृश्य को असत्य मानना आज के बौद्धिकों के लिए असम्भव है। आज यहाँ है वह ब्रहम जिसे सत्य मानकर माता-पिता, भाई-बहन तथा समस्त जग को मिथ्या मान लिया जाये।

बुद्ध द्वारा मोक्ष को जीवन लक्ष्य बताना इस युग में निरर्थक प्रयास लगता है। विरागी जीवन की शिक्षा देने वाले बुद्ध का अतीत सुख समृद्धि से सयुक्त था। अत: बैराग्य उन्हे रास आया परन्तु यह उन व्यक्तियों को कैसे स्वीकार हो जिन्होने वह सुख पाया ही नही

जिससे डूब कर बुद्ध ने

बैराग्य ग्रहण कर मोक्ष की कामना की। धूप में तपने वाले व्यक्ति को पानी प्रिय हो सकता है, सर्दी से कॉपते मनुष्य को नहीं। जहॉ गौतम बुद्ध तथा वेद, उपनिषद ने मोक्ष पर बल दिया है व ही पर चार्वाक ने ऋणम् कृत्वा घृतम् पिवेत द्वारा मानव के समस्त नैतिक मूल्यों के प्रसाद को ढहा दिया है। चार्वाक का यह निर्देश समस्त मानवीय उदान्ताओ की अनदेखी करके पाश्विक भूल का ही पोषण कर पाता है। इसमे समाज के यथार्थवादी तथा अध्यात्मिक मूल्यो का विषय विद्वमान है। मानव को यदि जीव विज्ञानवादी डार्विन के सिद्वान्तो की तुला पर रखकर देखा जाय तो वह पुशओं मे सर्वश्रेष्ठ पशु अथवा जीवधारियो में सर्वक्षेष्ठ जीवधारी कहा जायेगा। जिसमे त्याग और समर्पण की सामाजिक भावना उसे और अधिक गौरव प्रदान करती है। परन्तु चार्वाक का निर्देश पशुओं को भी निम्नजीवन जीने को ही प्रोत्साहित करता है।

आधुनिक युग में भौतिक वादी दृष्टिकोण निरन्तर विस्तृत रूप में विकसित हो रहा है। अध्यात्मिकता पर भौतिकता प्रभावी हैं जहॉ अध्यात्मिकता का चिराग जलाया जा रहा है आदर्श वादी वहाँ भी अध्यात्मिकता की आड में भौतिकता का ही पोशण अधिक हो रहा है आदर्शवादी मूल निरन्तर ढह रहे है। मूल्यों की स्वीकृत का आधार उनकी उपयोगिता एवं वैज्ञानिकता हो गयी हैं।

उपयोगिता की कसौटी पर कसने के बाद आदर्श एवं मूल्यो का जो खरा स्वरूप प्रकट होता है उसी को स्वीकार करना इस युग की व्यवहार वादी आस्था द्वारा सम्भव है।

जीवन की सहगामिनी धारा शिक्षा भी कुछ इसी प्रकार की द्वन्द्वात्मक परिस्थितियो में उलझी सी प्रतीत होती है। वैदिक युग, बौद्धकाल में दी जाने वाली शिक्षा का परम लक्ष्य जीवन की यथार्थ भौतिक समस्याओ से जूझने और उनके समाधान की सामर्थ्य प्रदान करने से अधिक समवद्ध है।

ऐसी परिस्थिति में जब कि जीवन मूल्य बढते जा रहे है भौतिकता अपने चरण चूमने को उन्मूख है। विज्ञान पूरे जगत की कसौटी है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र यर्थात् के दर्पण में ही अपना सच्चा रूप देखता है। नैतिकता का हास होता जा रहा है। इस प्रकार एक प्रश्न सहज ही मस्तिष्क के कपाट को खटखटा देता है कि मानव जीवन का लक्ष्य पारलौकिक पूर्णता प्राप्त करना है।

उपरोक्त प्रश्न के पीछे जहॉ एक ओर वैराग्य की नीरसता है वहॉ दूसरी ओर चरम भौतिकता में अशान्ति ही छटपटाहट है। दोने पक्ष एंकागी और अपूर्ण है पश्चिमी देशो का पूर्वी देशो की ओर पलायन क्या इसी तथ्य की पूर्ति नही करता कि अर्थ प्राप्त एवं उपयोग से प्राप्त बेचैनी को दूर करने के लिए वे अध्यात्मिकता की ओर बढ़ना चाहते है, वे हमारे देश की ओर देखते है जहॉ स्वंय ही हम भी अपने अध्यात्मिक मूल्यों को भूल रहे है।

शोध कर्ती का सही उद्देश्य एवं प्रयास है कि अपने उन मूल्यो को गॉधी जी की वाणी और उनके प्रयासो द्वारा देखते हुए महान दार्शनिकों सन्त स्वामी विवेकानन्द के विचारो से तुलना करना है, दोनो दार्शनिककी विचार धारा जो शिक्षा में प्रतिष्ठित है उनका वर्णन करना है।

वर्तमान अध्ययन का उद्देश्य

''शैक्षिक विचारो का महत्व'' गॉधी जी एंव स्वामी विवेकानन्द के विचार के पीछे निहित उद्देश्यो शोधकर्ती द्वारा शिक्षा जगत को एक सन्तुलित शैक्षिक विचार। दूसरे शब्दो में शिक्षादर्शन प्रदान करना हैं महात्मा गॉधी एवं स्वामीविवेकानन्द के शैक्षिक विचार धाराओ का समन्वय करके शिक्षादर्शन में वर्तमान युग की उपेक्षाओं, ढहते हुए आदर्श वादी मान्यतओ की अस्तित्व की रक्षा त था बदलते परिवेश में सन्तुलित शिक्षा देने की जिसतनी क्षमता है, इसका मूल्याकन करना इस अध्ययन का मुख्य लक्षय है।

वर्तमान अध्ययन की विधि :-

किसी भी दार्शनिक के शैक्षिक विचारों के अध्ययन की उपयुक्त विधि जिसका जीवन को रे सिद्वान्तो पर नहीं, वरन प्रयोगो की ठोस आधार शिला पर निखरा हो, जीवन वृन्तात्मक विधि है। शोध कर्ता ने ऐतिहासिक विधि का प्रयोग किया है। क्योकि इसके अतीत के गर्भ में स्थित तथ्य सहज ही प्रकाश में आ जाते है।

तथ्य मीमॉसीय विधि का प्रयोग शोधकर्ती को करना पड रहा है। कही-कही वर्णनात्मक विधि भी शोधकर्ता के लिए तथ्यो के स्पष्टीकरण हेतु स्वीकार रही है। लेकिन अधिकांश गूढ स्थलो पर वर्णनात्मक विधि के साथ गवेषणात्मक विधि को अपनाया गया है। फिर भी शोध में यह स्पष्ट कर देना शोधकर्ती अपनी जिम्मेदारी समझती है कि अपने इस लघु अध्ययन कार्य का अधिकतम् सफल बनाने हेतु पूर्वाग्रहो से मुक्त होकर यथा स्थान शोध प्रविधियो के अपनाया गया है।

अध्याय-2

1. शिक्षा का अर्थ

2. दर्शन का अर्थ

3. शिक्षा-दर्शन का समबन्ध

4. शिक्षा-दर्शन की आवश्यकता

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा अति प्राचीन काल से मानव के सर्वागीण विकास का एक मात्र स्रोत रही है। आज मानव शिक्षा के कारण ही सभ्यता के उच्च शिखर पर पहुँच सकता है। शिक्षा के फलस्वरूप ही मनुष्य सामाजिक प्राणी बन सकता है।

लॉक का मत है कि - ''पौधो का विकास कृषि द्वारा एंव मनुष्य का विकास शिक्षा द्वारा होता है।''

जान डीवी ने इसी तथ्य पर बल देते हुए लिखा है कि ''जिस प्रकार शारीरिक विकास के लिए भोजन का महत्व है उसी प्रकार सामाजिक विकास के लिए शिक्षा का।''

शिक्षा संस्कृति एवं सभ्यता की जननी है। सृष्टि के आरम्भ से लेकर वर्तमान समय तक शिक्षा का महत्व तथा प्रभाव भलीभाति स्वीकार किया जा रहा है। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की शिक्ष धातु में अ प्रत्यय लगाने से बना है। शिक्षा का अर्थ है सीखना और सिखाना। इसलिए शिक्षा का अर्थ हुआ-सीखने सिखाने की क्रिया। यदि हम शिक्षा के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द एजूकेशन पर विचार करे तो भी उसका यही अर्थ निकलात है। एजूकेशन शब्द लैटिन भाषा के एजूकेट्म शब्द से वना है और एजूकेट्म शब्द उसी भाषा के 'ए' तथा 'ड्यूक' दो शब्दो से मिलकर वना है।

'ए' का अर्थ है अन्दर से और 'ड्यूक' का अर्थ है आगे बढ़ना।' इसलिए एजूकेशन का अर्थ हुआ।–बच्चे की आन्तरिक शक्तियो को वाहर की ओर प्रकट करना।

शिक्षा का वास्तविक अर्थ

शिक्षा के व्यापक अर्थ में – ''शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली एक प्रक्रिया है।'' दूसरे शब्दो में हम कह सकते है कि वालक अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक जो कुछ सीखता और अनुभव करता है, वही वास्तव में शिक्षा है।

जे0एस0मैकेन्जी ने लिखा है कि – व्यापक अर्थ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो आजीवन चलती रहती है और जीवन में प्राय: प्रत्येक अनुभव से उसके भंण्डार में वृद्धि होती है। इसे जीवन का मुख्य साध्य भी कहा जा सकता है।

बालक के विकास में उसके माता–पिता, भाई–वहन तथा परिवार के अन्य सदस्य सहयोग करते है। उसके विकास में उसके समाज का भी योग दान रहता है। वास्तव में व्यक्ति के लिए समस्त संसार एक पाठशाला है। जीवन पर्यन्त व्यक्ति कुछ ने कुछ सीखता रहता है। इस प्रकार संसार के सभी व्यक्ति शिक्षक भी है और शिक्षार्थी भी वे एक दूसरे से कुछ न कुछ सीखा ही कर ते है।

एडलर महोदय ने लिखा है कि ''-शिक्षा मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्धित क्रिया है। यह केवल छोटे बालको से सम्बन्धित नही होती है यह तो जन्म से आरम्भ होती है, और मृत्यु तक चलती है।''

शिक्षा का संकुचित अर्थ

संकुचित अर्थ के अर्न्तगत शिक्षा केवल विद्यालय की चहार दीवारी तक रहती है। उसका संबन्ध बालक के विद्यालय में प्रदान की जाने वाली शिक्षा से है। दूसरे शब्दो में हम कह सकते है कि जब तक बालक को एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार वयस्क वर्ग निश्चित काल और निश्चित प्रकार का ज्ञान प्रदान करता है तो उसे हम शिक्षा के नाम से पुकारते है विद्यालय में वही शिक्षा प्रदान की जाती है जो बालक और समाज दोनो के उत्थान के लिए आवश्यक होती है। वास्तव में सकुंचित शिक्षा से बालक को पुस्तकीय ज्ञान तो प्राप्त होता है परन्तु उसका सर्वागीण विकास नही हो पाता है।

मैकेन्जी ने शिक्षा के संकुचित अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''संकुचित अर्थ में शिक्षा का अर्थ हमारी शक्तियों का विकास एवं सुधार के लिए चेतना पूर्वक किये गये प्रयासो से लिया जाता है।''

शिक्षा की परिभाषा

शिक्षा के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानो की परिभाषाएँ दी है जिनमे कुछ मुख्य निम्नलिखित है।''

1. फ्रोवेल के शब्दो में – ''शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक का जन्म जात शक्तियॉ प्रकट होती है।''

2. महात्मागॉधी के अनुसार –''शिक्षा से मेरा अभिप्राय उन सर्वश्रेष्ठ गुणो का प्रकटीकरण से है जो बालक और मनुष्य के शरीर, आत्मा और मस्तिष्क में विद्यमान है।''

3. स्वामी विवेकानन्द के अनुसार – ''व्यक्ति के अन्दर निहित पूर्णता का उद्घाटन ही शिक्षा है।''

4. अरस्तु के अनुसार – ''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन का निर्माण करना ही शिक्षा है।''

उपरोक्त परिभाषाओ के माध्यम से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि शिक्षा एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। जो बालक के अन्दर छिपी हुई शक्तियो को वतावरण के अनुकूल विकसित करती है।

दर्शन का अर्थ एवं परिभाषा

दर्शन शब्द अंग्रेजी के फिलासफी शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। फिलासफी शब्द यूनानी भाषा के दो शब्दो 'फिलास्' तथा 'सोफिया' से मिल कर वना है। 'फिलास् का अर्थ है ज्ञान तथा सोफिया का अर्थ है प्रेम। इस प्रकार फिलासफी शब्द का अर्थ हुआ ज्ञान के लिए प्रेम। प्रसिद्ध द्वार्शनिक प्लेटो ने दर्शन की इसी अवधारणा की ओर अधिक स्पष्ट करने के लिए लिखा है कि - ''वह व्यक्ति जो सतत् प्रकार के ज्ञान प्राप्त करने की प्रबल इच्छा रखता है और सीखने के लिए सदैव उत्सुक रहता है और कभी सन्तोष करके रूकता नही है वह वास्तव में दार्शनिक है।''

दर्शन का सम्बन्ध ज्ञान से है जिसकी प्राप्ति के लिए दार्शनिक अनवरत प्रयास करता है। प्राचीन विचार धारा के अनुसार दर्शन ऐसा शास्त्र है जिसके अन्तर्गत ईश्वर, ब्रहम, जीव, कल्याण, परमात्मा, के सम्बन्ध में अन्तिम ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा की जाती है। किन्तु आधुनिक विचार धारा दर्शन को इन बातो को ज्ञान की परिधि में नही रखती बल्कि उसके अनुसार दर्शन शास्त्र उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त सम्पूर्ण मानव जाति उसके द्वारा विकसित ज्ञान - विज्ञान उसकी वास्तविक समस्याओ तथा भौतिक एवं अभौतिक उपलब्धियो की तार्किक, व्यवस्थित कमवद्ध योजना, एवं विवेचना करता है।

इस प्रकार आधुनिक काल में दर्शन का विस्तृत अर्थ लगाया जाता है जिसमे लौकिक एवं पारलौकिक, भौतिक एवं आध्यात्मिक, प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक, मानवीय एवं अमानवीय आदि सभी विषयो पर चिन्तन किया जाता हैं

दर्शन की परिभाषा देते हुए प्रसिद्ध तत्वविद्व कॉन्ट का मत है कि -''दर्शन शास्त्र ? वोध-क्रिया का विज्ञान एवं उसकी अलोचना है।''

अपने विस्तृत अर्थ के कारण अब दर्शन का संबन्ध केवल आध्यात्मिक दर्शन एवं नैतिक दर्शन तक सीमित नही रहा बल्कि अव दर्शन की अनेक शाखाओं का जन्म हुआ है जैसे- सामाजिक दर्शन, राजनीतिक दर्शन, शिक्षा दर्शन आदि। इन शब्दो से स्पष्ट है कि दर्शन एक अति विस्तृत शास्त्र है और उसे किसी विशेष विषय के अध्ययन की परिधि में नही बॉधा जा सकता है।

दर्शन का तात्पर्य उस शास्त्र से है जिसके अन्तर्गत सृष्टिकर्ता प्रकृति अथवा मानव उसके द्वारा विकसित ज्ञान विज्ञान उसकी वास्तविक समस्याओ और उसकी भौतिक एवं अध्यातिमक उपलब्धियो की तार्किक व्यवस्थित एवं क्रमवद्व विवेचना कर उसके सम्बन्ध में अन्तिम ज्ञान प्राप्त करने की अनवरत प्रयास किया जाता है

1. उपर्युक्त अर्थो के आधार पर यदि हम दर्शन का विश्लेषणात्मक अर्थ प्रस्तुत करे तो निम्नलिखित तथ्य विन्दु प्राप्त होते है।-
2. दर्शन ज्ञान के प्रति प्रेम है।

3. दर्शन ज्ञान प्राप्ति का अनवरत प्रयास है।

4. दर्शन सत्य वास्तविक एवं अन्तिम ज्ञान की खोज है।

5. दर्शन ज्ञान का विज्ञान है।

6. दर्शन अन्तिम प्रश्न का अन्तिम उत्तर है।

7. दर्शन किसी विषय का तार्किक, क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन है।

दर्शन की परिभाषा

1- विश्वविख्यात दार्शनिक भारतीय गण राज्य के भूतपूर्व राष्ट्रपति डाक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के शब्दों में दर्शन की परिभाषा निम्नलिखित है- ''दर्शनशास्त्र यथार्थ के स्वरूप का तार्किक विवेचन है''।

2- एलबर्ट आर0 लॉग के अनुसार - ''दर्शन विशेष व्यवस्थित विचार द्वारा विश्व एवं मनुष्य में ज्ञान प्राप्त करने का निरन्तर प्रयास करता है।''

3- आर0 डब्ल्यू सेलर्स के शब्दों में - ''दर्शन विशेष रूप से उचित तथ्यों को व्यवस्थित विचार, उन की व्याख्याओं एवं जीवन की समस्या की उलझनों से सम्बन्धित है।''

शिक्ष दर्शन का सम्बन्ध

1- **दर्शन सिद्धान्त दार्शनिक विचारों के व्यवहारिक प्रयोग के रूप में :-**

कोई भी जीवन दर्शन क्यों न हो वह एक निश्चित विश्वास पर आधारित होता है और वह विश्वास जीवन के लिए प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से उपयोगी अवश्य होता है और जो जीवन के लिए उपयोगी होता है उसका शैक्षिक महत्व अवश्य होता है। अत: दर्शन को शिक्षा से पृथक नहीं किया जा सकता है। वास्तव में दर्शन एवं शिक्षा दोनों में घनिष्ट सम्बन्ध होता हैं समय-समय पर इतिहास इस बात की पुष्टि कर रहा है यदि हम दर्शन और शिक्षा के इतिहास का अध्ययन करे तो हमें पता चल जायेगा कि किस प्रकार विश्व के महान दार्शनिक प्लेटों, लॉक, डेकार्ट आदि के शैक्षिक सिद्धान्त उनके दार्शनिक विचारों के ही व्यावहारिक प्रयोग थे।

2- **दर्शन द्वारा जीवन में शिक्षा के महत्व की खोज :-**

दर्शन में कोई नवीन शैक्षिक तथ्य नहीं होते हैं। बल्कि वह केवल उन तथ्यों के महत्व की छानवीन करता है जो पहले से ही उपस्थित होते हैं। दर्शन हमारे शैक्षिक अनुभवों का प्राय: उसी रूप में स्वीकार करता है जिस रूप में वह होते है। वह जीवन में शिक्षा के महत्व की खोज करने का प्रयास करता है जिस रूप में वह होते है। जिस प्रकार धर्म कला समाज राजनीति आदि का दर्शन होता है ठीक उसी प्रकार शिक्षा के भी तथ्य होते है। इन सभी तथ्यों का जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।

3- **दर्शन एवं शिक्षा एक सिक्के दो पहलू के रूप में :-**

हार्न के अनुसार शिक्षा के समस्त तथ्यों को एक साथ रखने से दो बातो का ज्ञान होता हैं- शिक्षा विश्व प्रक्रिया के रूप में तथा शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया के रूप में।

इस प्रकार की प्रक्रिया इसलिए होती है क्योंकि ये व्यक्ति को अपने जीवन काल में विश्व एवं समय के अनुसार पूर्ण बनाने का प्रयत्न करती है। इसके अतिरिक्त ये विश्व एवं समय के समसत अनुभवों को व्यक्ति के विकास हेतु प्रयोग में लाती है। इन समस्त अनुभवों का निर्माण दर्शन की ही सहायता से होता है। इसलिए दर्शन एवं शिक्षा को दो वस्तुओं के समान माना जाता है । एक विचारात्मक है तो दूसरा क्रियात्मक है।

रास ने दोनों के इस सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि - ''दर्शन एवं शिक्षा एक सिक्के दो पहलूओं के समान है एक में दूसरा निहित है, दर्शन जीवन का विचारात्मक पक्ष है और शिक्षा क्रियात्मक पक्ष है।

4- **शिक्षा एवं दर्शन एक दूसरे के अन्योन्याश्रित के रूप में :-**

दर्शन एवं शिक्षा एक दूसरे के अन्योन्याश्रित होने के कारण दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। जहॉ पर दर्शन शिक्षा को प्रभावित एवं मार्ग प्रदर्शित करता है वहॉ शिक्षा दार्शनिक दृष्टिकोण पर नियन्त्रण रखती है। इसलिए विश्व के महान शिक्षा शास्त्री महान दार्शनिक हुए है। उदाहरण के

लिए प्लेटों एक महान दार्शनिक था क्योंकि वह एक महान शिक्षा शास्त्री भी था। दर्शन एवं शिक्षा की पारस्परिक निर्भरता को स्वीकार करते हुए 'विक्टे' ने लिखा है – ''दर्शन की सहायता के बिना शिक्षा का उद्देश्य भी पूरा नहीं हो सकता है।

5- **दर्शन एवं शिक्षा दोनों का सम्बन्ध आत्मा एवं मूल्यों से है। :-**

मानव आत्मा का रूप भौतिक आध्यात्मिक एवं सामाजिक होता है। इन तीनों के समन्वय से ही मानव व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इन तीनों के सूक्ष्म एवं यथार्थ स्वरूप का ज्ञान दर्शन देता है। और शिक्षा इन तीनों रूप के विकास की प्रक्रिया है। इसी प्रकार दर्शन एवं शिक्षा दोनों का सम्बन्ध मूल्यों से होता है। मूल्य क्या है ? उनका स्वरूप कैसा है? मानव इन मूल्यों को कैसे प्राप्त कर सकता है? इन सभी प्रश्नों का सम्बन्ध दर्शन और शिक्षा दोनों से है। मूल्य शाश्वत होते है। इन मूल्यों की प्राप्ति की प्रक्रिया में शिक्षक दार्शनिक का कार्य करता है। वस्तुतः कोई भी शिक्षक दार्शनिक विचारों को धारण किये बिना अपना कार्य नहीं कर सकता है ? इन सभी प्रश्नों का सम्बन्ध दर्शन और शिक्षा दोनों से है।

6- **सच्ची शिक्षा का संचालन सच्चा दार्शनिक ही कर सकता है :-**

वास्तव में यदि हम शिक्षा की उचित एवं लाभप्रद योजना बनाना चाहते है तो हमें दार्शनिक विचारों की सहायता से शिक्षा सम्बन्धी विचारों में स्पष्टता लानी होगी। यदि हम यह कहे कि

दार्शनिक विचारधारा को समझे बिना शैक्षिक विचार अन्धकार में छलाँग मारने के समान है तो यह अनुचित न होगा। इसलिए 'स्पेन्सर' ने यह कहा है कि – ''सच्ची शिक्षा का संचालन सच्चा दार्शनिक ही कर सकता है।''

7- **सभी दार्शनिक शिक्षक भी हुए हैं:-**

दर्शन एवं शिक्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध इस बात से भी जाना जा सकता है कि प्राचीन काल से अब तक उ प्रसिद्ध दार्शनिक हुए है उदाहरण के लिए प्लेटों, अरस्तू, सुकरात आदि महान दार्शनिक शिक्षक भी थे।

आधुनिक काल में लॉक, रूसों, डीवी, स्पेन्सर आदि महान दार्शनिकों ने शिक्षक की भूमिका प्रस्तुत की है।

हमारे देश में भी महात्मा गॉधी, विवेकानन्द, टैगोर, अरविन्द आदि महान विचारकों ने अपने जीव दर्शन को कार्यान्वित रूप देने के लिए बेसिक शिक्षा, राम कृष्ण मिशन स्कूलों, शान्ति निकेतन तथा अरविन्द आश्रम के रूप में शिक्षा व्यवस्था की और स्वयं शिक्षक की भूमिका का निर्वाह किया।

8- **शिक्षा का एक आधार दार्शनिक भी होता है। :-**

दर्शन एवं शिक्षा का घनिष्ठ सम्बन्ध इसलिए माना जाता है। कि शिक्षा के विभिन्न आधारों यथा – दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक एवं समाज शास्त्रीय में से दार्शनिक आधार सबसे प्राचीन एवं महत्वपूर्ण रहा है

आज भी है। यदि हम यह कहे कि शिक्षा के अन्य आधारों का समावेश दार्शनिक आधार में ही रहता है। तो यह अनुचित न होगा। क्योंकि दर्शन एक ऐसा व्यापक शास्त्र है जिसमें किसी वस्तु की वास्तविक स्थिति के लिए अन्य विषयों का भी अध्ययन करना पड़ता है।

शिक्षा के सन्दर्भ में इस समय दर्शन के चार सम्प्रदाय है आदर्शवाद, प्रकृतिवाद, यथार्थवाद और प्रयोजवाद। ये चारो सम्प्रदाय शिक्षा के प्रत्येक पहलू एवं समस्या पर प्रकाश डालते है। इस प्रकार से शिक्षा के बिना दार्शनिक आधार का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व भी नहीं है।

9- **शिक्षा के विभिन्न अंगों का दर्शन से घनिष्ठ सम्बन्ध :-**

यदि हम पाश्चात्य व भारतीय दर्शन के इतिहास का अध्ययन करे तो हमें यह पता चलता है कि - प्राचीन काल से ही दर्शन शिक्षा के विभिन्न अंगों शिक्षा की अवधारणा, शिक्षा उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, शिक्षण, शिक्षार्थी, विद्यालय, अनुशासन आदि को प्रभावित करता रहा है और उससे सम्बन्धित शिक्षा की समस्याओं का समाधान करने में मार्ग प्रदर्शक का काम करता रहा है।

शिक्षा दर्शन की आवश्यकता

1- **शिक्षा एवं शिक्षण के स्वरूप को समझने के लिए आवश्यकता :-**

प्रत्येक शिक्षक यह आशा करता है कि अपने व्यवसाय के कार्य में सफलता प्राप्त करें। कार्य में सफलता विशेष रूप से कार्य के स्वरूप पर निर्भर होती है शिक्षक का दायित्व शिक्षा के वास्तवित स्वरूप

को समझकर उसका उपयुक्त रूप में शिक्षण करना होता है। अतः शिक्षक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपने व्यवसाय को सफलता पूर्वक सम्पन्न करने के लिए शिक्षा एवं शिक्षण के स्वरूप को अच्छी तरह से समझे। चूँकि शिक्षा और शिक्षक के स्वरूप का निर्धारण शिक्षा दर्शन द्वारा ही होता है। अतः शिक्षा एवं शिक्षण का स्वरूप समझने के लिए शिक्षक को शिक्षा-दर्शन के अध्ययन की आवश्यकता है।

2- जीवन के रहस्यों एवं अनुभव की एकता से अवगत होने के लिए आवश्यकता :-

सामान्यतः प्रत्येक शिक्षक किसी विषय का अध्यापन करता है और वह उस विषय का प्रवक्ता, व्याख्याता, प्राध्यापक, अध्यापक आदि कहलाने में स्वाभिमान का अनुभव करता है किन्तु वास्तव में शिक्षक को जीवन का अध्यापक होना चाहिए न किसी विषय विशेष का यदि किसी विषय का विद्वान जीवन की समस्याओं से भी अपरिचित है वह किसी एक विषय का ज्ञाता तक नहीं कहा जा सकता, शिक्षक तो दूर की बात है। किसी शिक्षक का शिक्षकत्व इस बात पर निर्भर कता है कि वह बालक के सम्पूर्ण जीवन के रहस्यों से अवगत हो और जीवन के सन्दर्भ में अपने विषय को सम्पूर्ण ज्ञान की एक शाखा के रूप में पढ़ाये, जीवन के रहस्यों एवं अनुभव की एकता से परिचय प्राप्त करने के लिए शिक्षा दर्शन की अति आवश्यकता है।

3- सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक समस्याओं एवं उनके सामाधानों से परिचित होने के लिए आवश्यकता :-

सैद्धान्तिक समस्याएँ प्रकृति के गुणों के विवेचन एवं प्राकृत वस्तुओ के स्वरूप से सम्बन्धित होती है। इन समस्याओं का समाधान करने के लिए विज्ञान, तथ्यों का संकलन, विश्लेषण, निरीक्षण एवं परीक्षण करता है।

व्यवहारिक समस्याएँ एक पग आगे होती है। लक्ष्य की खोज एवं लक्ष्य विशेष की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले प्रयासों से सम्बन्धित होती है। शिक्षक का कार्य केवल इन दोनों प्रकार की समस्याओं यथा सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक समस्याओं से परिचित होना ही नहीं बल्कि उनके समाधानों को जानना भी आवश्यक है शिक्षा दर्शन इस कार्य में शिक्षक की सहायता ही करता है।

4- शिक्षण विधियों में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन के लिए आवश्यकता :-

एक सफल एवं प्रभावशाली शिक्षक उसी को माना जाता है जो कि उद्देश्य एवं परिस्थिति के अनुसार अपनी शिक्षण विधि में परिवर्तन एवं परिवर्द्धन कर लें। क्योंकि कोई भी शिक्षण विधि प्रत्येक परिस्थिति एवं उद्देश्य में उपयुक्त नहीं हो सकती है। यदि ऐसा होता तो विभिन्न शिक्षण विधियों के निर्माण की आवश्यकता न होती। परिस्थिति एवं उद्देश्य के अनुसार शिक्षण विधियों के निर्माण में परिवर्तन एवं प्ररिवर्द्धन करने में शिक्षा दर्शन अति सहायक होता है। इस

प्रकार स्पष्ट है कि शिक्षक को अपनी शिक्षण विधि परिस्थिति एवं उद्देश्य के अनुसार परिवर्तन एवं परिवर्द्धन करने में शिक्षा दर्शन बड़ा सहायक है।

5- **वर्तमान शिक्षा प्रणली के गुणों एवं दोषों को समझने के लिए आवश्यकता :-**

बहुत से शिक्षक वर्तमान शिक्षा प्रणली के गुण-दोषों से कोई सरोकार नहीं रखते है। वे सोचते है कि हमें क्या मतलब जो चल रहा है वैसा ही ठीक है। शिक्षकों का यह दृष्टिकोण ठीक नहीं है। उन्हें समय के प्रवाह के साथ शिक्षा प्रणाली में जो दोष नजर आये उन्हें समझना ही चाहिए। शिक्षा पर देश एवं काल का गहरा प्रभाव पड़ता है। बहुत दिनों से चली आ रही शिक्षा प्रणाली में दोषों का आ जाना स्वाभाविक है। शिक्षक को वर्तमान शिक्षा प्रणाली के दोषों से अवगत होना आवश्यक है। चूँकि शिक्षा के गुण-दोषों का विवेचना करना शिक्षा दर्शन का ही काम होता हैं अत : शिक्षक के लिए शिक्षा-दर्शन के ज्ञान की अति आवश्यकता है।

6- **शिक्षा प्रणाली में सुधार के लिए आवश्यकता :-**

शिक्षा के गुण-दोषों को जान लेने से ही शिक्षक के कार्य की इति नहीं हो जाती है। बल्कि उसके लिए शिक्षा सुधार की ओर उन्मुख होना अति आवश्यक है। हम देखते है कि स्वतंत्रता के पश्चात् शिक्षा में सुधार के क्षेत्र में अवनति ही हुई हैं इसका प्रमुख कारण शिक्षकों में उचित दृष्टिकोण

का अभाव है क्योंकि शिक्षक ही शिक्षा सुधार की धुरी है। शिक्षक में उचित दृष्टिकोण का निर्माण केवल शिक्षा-दर्शन द्वारा ही सम्भव है।

अत: उन्हें शिक्षा-दर्शन का अध्ययन करना अति आवश्यक है।

7- **साध्य एवं साधन के अन्तर को समझने के लिए आवश्यकता :-**

शिक्षक के लिए यह अति आवश्यक है कि वह साध्य एवं साधन के अन्तर को समझे। प्राय: देखा जाता है कि वास्तविक ज्ञान के अभाव में शिक्षक यह नहीं समझ पाता है कि साध्य क्या है और साधन क्या है? इसके परिणाम स्वरूप साध्य को साधन और साधन को साध्य समझ बैठता है यह वास्तव में शिक्षा एवं शिक्षक दोनों के लिए दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति है। इस स्थिति से बचना शिक्षक के लिए अति आवश्यक हो जाता है। साध्य एवं साधन के अन्तर का ज्ञान शिक्षा-दर्शन द्वारा ही सम्भव है।

8- **छात्रों में श्रम के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिए आवश्यकता :-**

वास्तव में शिक्षा सच्ची पुस्तकों को पढ़ना-पढ़ाना मात्र नहीं है बल्कि श्रम द्वारा उत्पादन करके अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करना भी है किन्तु श्रम के प्रति प्रेम को पढ़ाने की वस्तु नहीं होती बल्कि इसे तो छात्र शिक्षक के आचरण से सीखते है। आज का शिक्षण एवं छात्र कार्य करने से

डरता है। लिखने-पढ़ने को ही सब कुछ समझता है। शिक्षा दर्शन के अध्ययन से न केवल शिक्षक को श्रम के महत्व का ज्ञान होता है बल्कि वह तद्नुसार व्यवहार करने के लिए उन्मुख रहता है और ऐसा करने के लिए अपने छात्रों को भी प्रेरित करता है।

9- शिक्षक के व्यक्तित्व को प्रभावशाली बनाने के लिए आवश्यकता :-

शिक्षक एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। अत: उसे स्वाभाविक रूप से प्रभावशाली होना चाहिए। किन्तु यह तभी सम्भव हो सकता है जब शिक्षक का व्यक्तित्व और उसका आचरण इतना प्रभावशाली हो कि छात्र उसके सम्पर्क में आते ही शिक्षा ग्रहण कर लें। शिक्षक अपना यह स्वरूप तभी प्राप्त कर सकता है जबकि उसे शिक्षा दर्शन का पर्याप्त अध्ययन हो और यह अपने जीवनकाल में ढाल लिया हो।

10- शिक्षार्थियों में आत्म अनुशासन का विकास करने के लिए आवश्यकता :-

मानव जीवन के लिए अनुशासन की अति आवश्यकता है। अनुशासन विहीन जीवन पशुवत् जीवन माना जाता है। अनुशासन के अभाव में व्यक्ति परिवार, राष्ट्र समाज के लिए तो एक समस्या बन जाता है किन्तु वह अपने जीवन को भी समस्यात्मक बना लेता है। आज हम देखते है कि किस प्रकार मार्ग दर्शन के अभाव में युवा तनाव दिन पर दिन बढ़ता ही जा रहा है। छात्र तुरन्त अनुशासनहीनता का प्रदर्शन करने लगते है। अनुशासन की समस्या का समाधान तभी हो सकता है जब कि शिक्षक छात्रों में आत्म अनुशासन की भावना का विकास करने में समर्थ हो। शिक्षकों को इस कार्य में दर्शन से अत्यधिक

सहायता प्राप्त हो सकती है। क्योंकि वे इसके द्वारा इस बात का ज्ञान कर सकते है कि किस प्रकार बालकों की पाशविक प्रवृत्तियों का शोधन एवं मार्गन्तीकरण करके उनमें आत्म-नियन्त्रण की क्षमता उत्पन्न की जा सकती है।

11- राष्ट्रीय एकता के विकास के लिए आवश्यकता :-

किसी देश व राष्ट्र की प्रगति के लिए राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता है। किन्तु राष्ट्रीय एकता तभी सम्भव है जबकि लोग अपनी जाति वर्ग सम्प्रदाय के संकुचित स्वार्थो को छोड़कर राष्ट्र की एकता-अखण्डता के लिए कार्य करें। किन्तु लोग संकुलित स्वार्थ में फँसकर राष्ट्र के हित को तिलांजलि दे देते है। छात्र भी इस संकुचित दृष्टिकोण से अछूते नहीं रहते, बल्कि वे तो कभी-कभी विघटनकारी तत्वों का नेतृत्व करते है।

12- अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना का विकास करने के लिए आवश्यकता :-

वर्तमान समय में विज्ञान के क्षेत्र में हुई आश्चर्यजनक प्रगति के परिणामस्वरूप संसार के सभी देश के लोग एक दूसरे देश के लोगों से सम्पर्क स्थापित कर रहे है। इस प्रकार भौगोलिक एकता का अन्तर हो गया है तो दूसरी ओर महाविनाशकारी शस्त्रों, बमों, रॉकेटों के अविष्कार हो जाने के कारण आज मानव जाति विनाश के कगार पर खड़ी है। भला हमारी ये प्रगति जिसमें हम अपने आप को असुरक्षित महसूस

करने लगे है किस काम की इस समस्या का समाधान वैज्ञानिक नहीं बल्कि दार्शनिक विशेष तौर से शिक्षक दार्शनिक या शिक्षक ही कर सकते है। यदि सभी देश के शिक्षक छात्रों व युवकों में विश्व बन्धुत्व, विश्व शान्ति के दर्शन का विकास करने का प्रयास करे तो निश्चय ही उसमें अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास होगा।

13- सच्चा शिक्षक एवं सच्चा विद्यार्थी बनने के लिए आवश्यकता :-

शिक्षक को स्वयं सच्चा शिक्षक बनने एवं शिक्षार्थी को सच्चा शिक्षार्थी बनने के लिए शिक्षा दर्शन का ज्ञान होना अति आवश्यक है। इसलिए कहा जाता है कि शिक्षक को शिक्षण की सफलता के लिए दार्शनिक बनना ही पड़ता है। यदि शिक्षक का दार्शनिकीकरण नहीं होता तो वह न तो शिक्षा विज्ञान के विभिन्न स्वरूपों को अच्छी तरह समझ सकता है और न तो शिक्षण सम्बन्धी किसी समस्या को सुलझा सकता है। वास्तव में शिक्षा-दर्शन शिक्षक को सूक्ष्म बुद्धि, प्रज्ञा चक्षु एवं प्रज्ञा कर्ण देकर उसे सच्चा शिक्षक बनाता है।सच्चा शिक्षक अपने प्रौढ़ छात्रों में परिपक्व जीवन दर्शन विकसित कर सकता है। परिपक्व जीवन दर्शन के विकसित होने से छात्र में परिपक्वता आती है। उनकी बुद्धि परिपक्व होती है। छात्र जो भी निर्णय लेता है बहुत समझ बूझ कर लेता है। इस प्रकार शिक्षार्थी सच्चा शिक्षार्थी हो जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि केवल स्वयं ही सच्चा शिक्षक बनने के लिए बल्कि शिक्षार्थियों को सच्चा

शिक्षा र्थी बनने के लिए शिक्षक को शिक्षा दर्शन का ज्ञान होना अति आवश्यक है। इस तथ्य को सामने रखा हुए भारत के भूतपूर्व शिक्षामंत्री श्री कालू लाल श्रीमाली ने लिखा है –

''इस प्रकार शिक्षक को कोई शिक्षा दर्शन अवश्यमेव होना चाहिए, केवल यह नहीं कि शिक्षक को छात्रों के जीवन दर्शन का विकास करने के लिए तैयार होकर इस व्यवसाय में प्रवेश होना चाहिए।''

अध्याय-3

1. **गाँधी जी का जीवन-परिचय**
2. **गाँधी जी की दार्शनिक विचारधारा**
   (अ) सत्य
   (ब) अहिंसा
   (स) आत्मा
   (द) प्रकृति-जगत
   (य) जीवन का लक्ष्य मुक्ति
3. **गाँधी जी की शैक्षणिक विचारधारा**
   (1) शिक्षा का अर्थ
   (2) शिक्षा का उद्देश्य
   (3) पाठ्य-क्रम
   (4) शिक्षण-विधि
   (5) शिक्षक
   (6) शिक्षार्थी
   (7) विद्यालय
   (8) अनुशासन
   (9) स्त्री-शिक्षा एवं प्रौढ़-शिक्षा
   (10) सह-शिक्षा एवं जन-शिक्षा
   (11) धर्म-शिक्षा
   (12) वर्धा-योजना

महात्मा गाँधी का जीवन परिचय

भारत के सिद्ध पुरूषों एवं युग निर्माताओं की कभी कमी नहीं रही है। महात्मा गाँधी भी उनमें से एक है। महात्मा गाँधी का पूरा नाम मोहन दास करम चन्द गाँधी था और उनका जन्म दो अक्टूबर सन् 1869 को पोरबन्दर सुदामापुरी काठियावाड में हुआ था। इनके पिता जी का नाम कर्मचन्द्र गॉधी और माता जी का नाम पुतलीबाई था। माता-पिता दोनों वैष्णव धर्म को मानने वाले तथा धर्मनिष्ठ थे। जिसका प्रभाव बालक मोहनदास गॉधी पर भी पड़ा। मोहनदास गॉधी कुछ बड़े हुए तो उनके पिता ने एक पाठशाला में भेजा। शुरू से ही मोहनदास साधारण विद्यार्थी रहे। कुछ लोग इन्हें मन्द बुद्धि का मानते थे। शुरू से ही इनकी अभिरूचि खेल, तमासें, नाटक देखने में थी। यही कारण था कि सत्य हरिश्चन्द्र और श्रवण कुमार जैसे नाटकों का प्रभाव इन पर अमिट पड़ा।

सन् 1882 ई0 में मोहनदास का विवाह कस्तूरबा के साथ हो गया। तब वे केवल 13 वर्ष के थे। विवाह के फलस्वरूप इनका मन सांसरिक सुखों की ओर लगा जिससे इनको एक साल फेल भी होना पड़ा। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा पोरबन्दर में ही हुई। आगे की पढ़ाई पूरा करने आप लन्दन गये और वैरिस्ट्री की परीक्षा पास की। आप भारत-माता और दीन-हीनों के सच्चे वकील बने। इनके त्याग, तपस्या और बलिदान के कारण ही भारतवासी आज इन्हें राष्ट्रपिता कह कर याद करते है। श्रद्धा और आदर से बहुत लोग आपको बापू भी कहते थे। मानवतावाद के प्रमुख पोषक भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गॉधी विश्व

विख्यात राजनीतिक गुरू, नेता और समाज सुधारक तो थे ही मौलिक विचार सम्पन्न उच्चकोटि के एक शिक्षा शास्त्री भी थे। वैरिस्ट्री पास करने के उपरान्त बम्बई आने पर उन्होंने डॉ0 मेहता से भेंट की। भाई राम चन्द्र जी से गॉधी का परिचय डॉ0 मेहता ने कराया था। तब गॉधी जी ने बम्बई में तथा राजकोट में वकालत प्रारम्भ की।

वकालत में अधिक सफलता शुरू में न ही मिली क्योंकि उन्हें चालाकी से बोलने एवं बहस करने की कला नहीं आती थी। सन् 1898 में सेठ अब्दुल्ला फर्म के रिश्तेदार के एक मुकदमें की पैरवी के लिए वह दक्षिण अफ्रीका गये। दक्षिण अफ्रीका में वकालत की लेकिन वहॉ के भारतीयों की बुरी दशा देखकर बहुत प्रभावित हुए और वे उनके सुधार की ओर झुक गयें। उन्होंने भारतीयों के प्रति जाति रंग द्वेष की भावना को दूर करने के लिए भारतीयों को संगठित करके गॉधी जी ने सरकारी अधिकारियों से भारतीयों के कष्ट निवारणार्थ पत्र-व्यवहार किया। अधिकारियों ने सहानुभूति दिखाई तथा उनके मार्गो को उचित माना। सन् 1914 में नेटाल में भारतीयों को कौसिल की सदस्यता से दूर करने के लिए एक आवेदन -पत्र तैयार किया और बिल ाक विराध किया। उसी वर्ष इन्होंने नेटाल कांग्रेस भी स्थापित किया।

बाद में वह भारत लौट आये और उसे समय के नेता लोक मान्य तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, दादा भाई नौराजी आदि से मिले। इसके बाद वह पुनः अफ्रीका गये। सन् 1914 ई0 तक गॉधी का जीवन अफ्रीका के भारतीयों को स्वतंत्र करने में बीता।

सन् 1897 से 1914 के बीच गांधी जी ने अफ्रीका में एक नया अनुभव किया। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के नवजीवन एवं समाज निर्माण का कार्य तो गांधी जी ने किया ही साथ ही साथ उनकी शिक्षा के लिए कोशिश करते रहे। इस कार्यके लिए उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के अपने निवास पर एक आश्रम स्थापित किया। सन् 1915 में गांधी जी भारत लौट आये। उनका लोगों ने खूब आदर-सत्कार किया।

सन् 1915 में गांधी जी ने सावरमती में एक सत्याग्रह आश्रम की भी स्थापना की। सन् 1917 में गोरों के चम्पारन में अत्याचार क विरूद्ध आन्दोलन किया। फलस्वरूप गोरों के अत्याचार को अंग्रेज सरकार ने बन्द करवाया। चम्पारन सत्याग्रह में उन्हें सत्य का बोध हुआ। इसके बाद गांधी जी भारतीय राजनीति में आ गये और कई आन्दोलन के अगुवां बने। सन् 1919 में भारतीय अधिनियम पास हुआ जो भारतीयों के हित में अच्छा नहीं थौ उन्हें स्वराज्य एवं स्वतंत्रता नहीं मिली। फलस्वरूप उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की ओर से असहयोग आन्दोलन शुरू किया। जो लगभग दो वर्ष तक चलता रहा। सन् 1921 ई० में इन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा योजना के सम्बन्ध में विचार प्रकट किये।

सन् 1924 में हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए प्रयास किया। 1930 में गांधी जी ने नमक कानून के विरूद्ध आन्दोलन किया एवं स्वयं नमक बनाया और जेल गये। सन् 1931 में गॉधी जी गोलमेज कान्फ्रेन्स में गये इसके फलस्वरूप भारतीयों को शासन में अधिकार दिये जाने के लिए कहा गया। सन् 1932 में पुनः सत्ताधिकारी के विरूद्ध सत्याग्रह आनदोलन किया। सन् 1933 में इन्होंने हरिजन उद्धार का बीणा उठाया। सन् 1934 में ग्रामों द्वारा का काम भी शुरू किया।

सन् 1935 में सेवाग्राम में अपना आश्रम बनाया और ग्रामीण उद्योग के विकास का कार्य शुरू किया। सन् 1935 में भारतीय अधिनियम पुनः पास हुआ। जिसमें भारतीयों को शासन में भाग लेने के लिए अधिकार दिये गये। सन् 1937 में वर्धा में बेसिक शिक्षा योजना का प्रारूप तैयार हुआ और बाद में कांग्रेस मंत्रीमण्डल द्वारा उनके अनुसार शिक्षा दी जाने लगी। सन् 1937 के मध्य के करीब काँग्रेस शासन काल प्रान्तों में रहा। सन् 1939 में दूसरा विश्व युद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें सहायता देने का विरोध कांगेस ने किया और फलस्वरूप शासन कार्य छोड़ दिया। सन् 1942 में गाँधी जी के नेतृत्व में वर्धा में एक सभा हुई जिस में भारत छोड़ो आन्दोलन के लए प्रस्ताव पास किया गया। फलस्वरूप अंगेजी शासन के विरूद्ध आन्दोलन हुआ

सन् 1945 में युद्ध समाप्त होने पर स्वतंत्रता देने के लिए अंग्रेजों ने गाँधी जी एवं काँग्रेसी नेताओं से बात-चीत शुरू की। जिसके फलस्वरूप सन् 1945 में अन्तरिम शासन स्थापित हुआ। सन् 1946 में शिमला कान्फ्रेन्स के असफल होने पर कैबिनेट मिशन के नेताओं ने भारत छोड़ो का प्रस्ताव स्वीकार किया और अन्त में 15 अगस्त सन् 1947 ई0 में अंग्रेजी शासन समाप्त हो गया तथा देश स्वतंत्र हो गया।

30 जनवरी सन् 1948 ई0 को प्रार्थना सभा विड़ला भवन में नाथूराम गोडसे नामक व्यक्ति द्वारा गांधी जी को गोली माकर हत्या कर दी गयी।

महात्मा गाँधी के दार्शनिक विचार

आधुनिक युग में गाँधी-दर्शन की चर्चा होती है। सर्वोदय मण्डल द्वारा इसका प्रचार भी काफी हुआ है। साथ ही साथ गांधी प्रतिष्ठानों की स्थपना से भी गॉधी-दर्शन का अध्ययन एवं प्रसार काफी हो रहा है और काफी उच्च स्तर पर गॉधी जी पर भारतीय एवं अन्य दर्शनों की पूरी छाप है। इस बात को गॉधी जी ने भी स्वीकार किया है। हम निम्न तथ्यों के माध्यम से गॉधी के दर्शन को स्पष्ट करने का प्रयास करेगें

1- सत्य

सत्य और सत् में घनिष्ठ सम्बन्ध है। सत् का अर्थ है असितत्व और सत्य का अर्थ है वास्तविकता। गॉधी जी ने कहा है कि सत्य शब्द सत् से बना है। सत्य के बिना दूसरी किसी चीज की हस्ती ही नहीं है। जहॉ सत्य नहीं है वहॉ शुद्ध ज्ञान की सम्भावना नहीं है। इस सत्य की आराधना के लिये ही हमारा अस्तित्व है। इससे स्पष्ट है कि सत्य जीवन का एक अंग है तथा सत्य गहन से भी गहन है।

सत्य को गॉधी जी ने चार अर्थो में लिया है -

1- कल्याण रूप में।

2- यज्ञ, तप और दान में दृढ़ता के रूप में।

3- भले काम के रूप में।

4- संकल्प शक्ति के रूप में

इससे स्पष्ट है कि सत्य कितना व्यापक, प्रभावशाली एवं जीवनोपयोगी है। गॉधी जी सत्य का अर्थ सच बोलने से ही नहीं लेते थे बल्कि सत्य को तो जीवन का अमूल्य रत्न मानते थे जिसे धारण कर व्यक्ति की अन्तरात्मा सत्य एवं सत् के वास्तविक ज्ञान की खोज करती है और उसी के अनुरूप कार्य करती है जिससे उसका अपना तथा अन्य लोगों का कल्याण होता है तथा जीवन भी ऊँचा उठता है।

इस प्रकार सत्य निश्चित, अनन्त, शाश्वत् एवं परम तत्व है। दूसरे शब्दों में सत्य ब्रहम है। सत्य ईश्वर है। वास्तव में ईश्वर सत्य, ज्ञान एवं आनन्द रूप हे। अतः गांधी जी के अनुसार सत्य परम् तत्व ब्रहम है।

2- अहिंसा

गांधी जी सत्य और अहिंसा को एक सिक्के के दो पहलू मानते थे। किन्तु सत्य साध्य है और अहिंसा साधन हैं अहिंसा एक मानसिक दृष्टिकोण है जो हमारे सभी कर्मो को अनुशासित करता है जब मनुष्य सांसारिक आकर्षणों से ऊपर उठता है हृदय को पवित्र बनाता है, भय और अभिमान को छोड़ता है। कपट और छल के प्रति घृणा करता है और मन बचन और कर्म से हिंसा नहीं करता है, तभी उसको अहिंसा का ज्ञान प्राप्त होता है। जो मनुष्य अहिंसा में विश्वास करते है वे ईश्वर में भी विश्वास करते है। केवल

शब्दों द्वारा अहिंसा का ज्ञान प्राप्त नहीं होता हैं ईश्वर की कृपा से सत्कर्मो द्वारा अहिंसा का ज्ञान होता हैं जो अहिंसा को मानता है वह प्रत्येक प्राणी में ईश्वर की प्रतिछाया को देखता है। तलवार द्वारा वह दूसरों का खून नहीं कर सका। दूसरों के खून बहने की अपेक्षा वह स्वयं मृत्यु का आलिंगनकरने में शान्ति पाता हैं

गॉधी जी ने कहा है कि सत्याग्रह ही न्याय के मार्ग में अटूट विश्वास रखता है। वह असीमित धैर्य एवं प्रचुर मात्रा में आशा रखता है किन्तु अहिंसा प्रेम से पैदा होती है।

3- आत्मा

जिसमें जीवन होता है वही जीव है। सभी जीव देह धारी होते है। देह न रहने पर साक्षात् ईश्वर होते है। गांधी जी प्राचीन हिन्दू विश्वासों के अनुसार अनेक प्रकार के जीवों को मानते है। कुछ जीवों में चेतना थोडी होती है तो कुद में बहुत। कुछ कम परमार्थी होते है तो कुछ अत्यधिक परमार्थी होते है। मनुष्य सभी जीवों में सर्वश्रेष्ठ होता है जो जागृत होता है। सभी इस जगत में जो कुछ है वह चेतना और परमार्थिता से पूर्ण है। सभी जीव चेतनामय होते है उनमें एक अनत: चेतना भी होती है। जिसे प्राण कहा जाता है जो अन्दर ही अन्दर सदैव सजग रहती है तथा क्रिया करती है। प्रत्येक जीव में प्राण, आत्मा, परमार्थ, बुद्धि होती है।

गाँधी जी ने समाज में सभी आत्माओं को एक समान माना है और प्रयत्न किया है कि उसमें एकता स्थापित हो। यह आत्मा मनुष्य में सबसे अधिक विकसित रूप में दिखाई देती है। जिसके कारण इसमें

पारस्परिक सौहार्दता पायी जाती है। इसी सिद्धान्त पर उन्होंने एकता के लिए विश्व एकता पर जोर दिया है।

4- प्रकृतिजगत

प्रकृति के तीन गुण है - सत्, रज् और तम्। इन तीनों में साम्यता होती हैं जिसके कारण प्रकृति का विकास होता है। आत्मा या परमात्मा का साहचर्य होने से प्रकृति क्रियाशील और गतिशील बनती है। आत्मा से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार, अहंकार से मन, इन्द्रियॉ और शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गंध की उत्पत्ति हुई है अन्तिम पॉच भागों से क्रमशः वायु, आकाश, तेज, जल और पृथ्वी जैसे पॉच तत्व बने हुए है जिससे मानव देह की रचना हुई है। अन्तिम पॉच भागों से क्रमशः वायु, आकाश, तेज जल और पृथ्वी जैसे पॉच तत्व बने हुए है जिससे मानव देह की रचना हुई है। चेतन पदार्थों में मन और इन्द्रियॉ है और अचेतन में केवल पंच महाभूत होते है। वस्तु जगत में चेतन और अचेतन दो प्रकार के पदार्थ होते है। वस्तु जगत में चेतन और अचेतन दो प्रकार के पदार्थ होते है। पंच महाभूतों के अनुवर्तिक ढंग से संगठन होने से देह का निर्माण होता है। इसके विघटन से मृत्यु होती है। जगत में उत्पत्ति और नाश का विधान ईश्वरीय है। ये दोनों क्रियाएँ स्वाभाविक है। प्रकृति या जगत अनित्य है। ऐसा विश्वास गॉधी जी का था।

गॉधी जी कहना है कि प्रत्येक कार्य को समझ-बूझकर करना चाहिए तभी नैतिकता होगी। ज्ञान के कारण मनुष्य में एक सद्भावना होती है जिसमें स्वार्थ नहीं होता हैं यही अहिंसा का सही अर्थ होता है। इससे स्वयं का सुधार होता है और दूसरे की भलाई होती है।

5- जीवन का लक्ष्य मुक्ति

गाँधी जी ने जीवन को प्रेरणादायक माना है। जिसका कार्यपूर्णता की प्राप्ति हैं जो मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है। यह पूर्ण भारतीय दृष्टिकोण है। मुक्ति का अर्थ सत्य की प्राप्ति, अहिंसा की प्राप्ति, हरि दर्शन, ईश्वर दर्शन, सत्य की प्राप्ति, आत्मज्ञान, परम पद प्राप्ति से है। मुक्ति वह स्थिति है- जीव और पर मात्मा का, जगत और परमात्मा का अभेद भाव या अद्वैत भाव होता हे।

मुक्ति दो प्रकार की होती है :-

1- जीवन मुक्ति है जो मरने पर सम्भव है।

2- देह धारण करते हुए मुक्ति मिलती है।

गाँधी जी दोनों प्रकार की मुक्ति के सार्थक दिखाई देते है। हिन्दू धर्म में उन्होंने लिखा है कि- शरीर स्वयं हिंसा का घर है। इसलिए मोक्ष और नित्य आनन्द शरीर से पूर्ण मुक्ति पाने में ही कारण होता है । गाँधी जी का विचार है कि मोक्ष देने वाला मनुष्य लोक में ही है। जहाँ मनुष्य धर्म, कर्म, ज्ञान, वैराग्य से तथा सतत् प्रयत्न करता हुआ परम पद प्राप्त करता है। यह मुक्ति एक जन्म में सम्भव नहीं होती है इसके लिए कई जन्म इस लोक में लेने पड़ते है ऐसा विचार गांधी जी का है।

गाँधी जी के विचार से व्यक्ति की इच्छाओं स्वार्थाओं एवं अशक्तियों को रूपान्तरित करना चाहिए

जिससे अन्तः प्रेरणा क्रियाशील हो। मनुष्य को दिव्य प्रेरणा से प्रेरित करना चाहिए। यह लोक कल्याण के रूप में उन्नयन करके सम्भव हो सकता है। व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन के सात्विक नियमों का पालन करके साधना की प्राप्ति होती है और इस साधना के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है। मुक्ति पथ की ओर ले जाने के लिए गाँधी जी ने अपना उत्तम जीवन व्यतीत करने के लिए कहा है। इसलिए उन्हें नीति शास्त्र के आधार पर जीवन व्यतीत करने को कहा है। मुक्ति के लिए सन्यास आवश्यक नहीं है।

गाँधी जी की शैक्षणिक विचारधारा

गांधी जी के दार्शनिक विचार पर दृष्टिपात करने के पश्चात् यह सिद्ध होता है कि - इन विचारों को उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में लाने का प्रयत्न किया और प्रयोग भी किया। शिक्षा को नया रूप देने में गॉधी जी सफल भी हुए। गाँधी जी ने शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, पाठ्यक्रम आदि शिक्षा के अन्य अंगों पर गहनता से विचार व्यक्त किया है।

1- **शिक्षा का अर्थ :-**

गाँधी जी ने शिक्षा का अभिप्राय आधुनिक विचार-धारा के अनुसार बताया है लेकिन उस पर अपनी निजी छाप भी दी है। गॉधी जी केवल साक्षरता अर्थात् साधारण लिखने-पढ़ने के ज्ञान को शिक्षा नहीं मानते। कारण साक्षरता तो केवल आचरण मात्र है। जिसके कारण व्यक्ति सभ्य दिखाई देता है। शिक्षा तो वास्तव में ऊपर से नहीं भीतर से होती है।

गाँधी जी लिखते है कि - ''शिक्षा से मेरा अभिप्राय: बालक और मनुष्य में शरीर मन और आत्मा के विचार से सर्वोत्तम को चतुर्दिक बाहर प्रकट करता है।'' उन्होंने एक अन्य स्थान पर लिखा है कि -'' सच्ची शिक्षा वह है जो बालकों को आत्मिक, बौद्धिक और शारीरिक क्षमताओं को उनके अन्दर से बाहर प्रकट करें और उत्तेजित करें।''

2- **शिक्षा का उद्देश्य :-**

गॉधी जी ने शिक्षा का एक उद्देश्य नहीं रखा है बल्कि कई उद्देश्य बताये है। क्योंकि उन्होंने शिक्षा को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा है। गांधी जी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य दो प्रकार के हैं -

1. तात्कालिक उद्देश्य ।
2. सर्वोच्च उद्देश्य ।

1- **शिक्षा का तात्कालिक उद्देश्य :-**

जीवन के सभी पक्षों से सम्बन्ध रखने के कारण गांधी जी की शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य अनेक है। यहॉ हम कुछ प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन कर रहे है। यथा -

अ - **जीविकोपार्जन सम्बन्धी उद्देश्य**

इस उद्देश्य का यह अर्थ है कि शिक्षा बालक को बड़े होने पर जीविकोपार्जन के योग्य बनाये। यदि शिक्षा यह कार्य नहीं करती है तो वह व्यर्थ है। यदि वह व्यक्ति को भोजन, वस्त्र और मकान की मूल आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करती है तो वह निरर्थक है।

ब - **सांस्कृतिक उद्देश्य**

गांधी जी सांस्कृतिक उद्देश्य को बताते हुए 1946 ई0 में कस्तूरबा गांधी बालिका आश्रम नयी

दिल्ली की बालिकाओं से कहा था कि – ''मैं शिक्षा के साहित्यिक पक्ष के बजाय सांस्कृतिक पक्ष को अधिक महत्व देता हूँ।'' इस प्रकार गांधी जी के अनुसार संस्कृति मानसिक कार्य का परिणाम नहीं है। इसके विपरीत यह आत्मा का गुण है जो मानव व्यवहार के प्रत्येक पहलू पर पाया जाता है।

स- **सामन्जस्यपूर्ण विकास का उद्देश्य**

इस उद्देश्य का यह अर्थ है कि बालक की शाररिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियों को इस प्रकार विकसित किया जाये कि उसक सामन्जस्य पूर्ण विकास हो। मस्तिष्क और हृदय के विका स के साथ गाँधी जी शरीर के विकास पर भी बल देते है।

द- **चारित्रिक विकास का उद्देश्य**

गाँधी जी का विश्वास है कि चरित्र निर्माण शिक्षा मुख्य उद्देश्य है। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि – ''मैं ने हृदय की संस्कृति या चरित्र के निर्माण को सदैव प्रमुख स्थान दिया है।''

य- **मुक्ति का उद्देश्य**

गाँधी जी के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की मुक्ति है। '' सा विद्या या विमुक्तयें'' शिक्षा या विद्या वही है जो मुक्ति प्रदान करती है। गाँधी जी ने इसके दो अर्थ बतायें है। उनके अनुसार मुक्ति का अर्थ वर्तमान जीवन में भी सब प्रकार की क्षमता से स्वतंत्रता की दशा आर्थिक

राजनैतिक व मानसिक हो सकती है। जब तक मनुष्य इनमें से किसी भी बेड़ी में बंधा हुआ है तब तक उसकी प्रगति असम्भव है।

अतः शिक्षा का उद्देश्य है मनुष्य को सभी प्रकार की दासता से मुक्ति करना।

2- **शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य :-**

गांधी जी के अनुसार शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य है- अन्तिम वास्तविकता का अनुभव, ईश्वर और आत्मानुभूति का ज्ञान।

शिक्षा के सभी तात्कालिक उद्देश्य इस उद्देश्य से भिन्न है। गांधी जी आत्मानुभूति को जीवन और शिक्षा का सर्वोत्तम कार्य मानते है। मनुष्य का नैतिक एवं पूर्ण विकास इसलिए किया जाना चाहिए जिससे कि वह अन्तिम वास्तविकाता को जान सके और अपने नश्वर शरीर को अनश्वर शरीर का भाग बना सके। यही अन्तिम ध्येय हैं, जिसको प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को प्रयत्न करना चाहिए।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

गांधी जी ने उपर्युक्त उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न विषयों के अध्ययन के लिए संकेत किये है। यह निश्चय है कि गांधी जी अपने समय की प्रचलित शिक्षा प्रणाली को एकांकी मानते थे। वे आजीविका के साधन को प्रमुख मानते थे। विद्याभ्यास के पीछे समझदारी, कर्तव्यपरायणता, सेवाभाव विद्यमान हो

ता है। इसके कारण महात्मा गांधी जी ने पाठ्यक्रम में विभिन्न प्रकार के विषय लिये हैं ये विषय निम्नवत् है :-

1- **हस्तकौशल**

कताई-बुनाई, दफ्ती, कागज, मिट्टी धातु

लकड़ी, चमड़े का काम, कृषि तथा बागवानी।

2- **भाषा**

मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, देश की विभिन्न

भाषायें तथा हिन्दुस्तानी।

3- **गणित**

अंकगणित, रेखागणित, बीजगणित तथा नापतौल ।

4- **सामाजिक अध्ययन**

भूगोल, इतिहास, नागरिक शास्त्र तथा समाज का अध्ययन ।

5- **सामाजिक विज्ञान**

रसायन, भौतिक, जीव-विज्ञान तथा गृह-विज्ञान स्वास्थ्य विज्ञान।

6- **कला**

संगीत, चित्रण, पेन्टिंग

7- **शरीर शिक्षा**

व्यायाम, ड्रिल, खेलकूद आदि क्रियाएँ।

8- **आचरण शिक्षा**

दैनिक कार्य के लिए आरम्भ में - नेतिक शिक्ष, समाज सेवा, प्रार्थना और अन्य क्रियाएँ।

शिक्षण विधि

शिक्षा पद्धति के सम्बन्ध में गांधी के विचार किसी एक स्थान पर नहीं दिखाई देते हैं। बल्कि वह यत्र-तत्र विखरे हुए है। गांधी जी ने शारीरिक अंगों का विवेकपूर्ण प्रयोग करके सीखने पर बल दिया है। गॉधी जी ने शिक्षण की विधियों का यत्र-तत्र उल्लेख किया है। जिनकी चर्चा यहॉ की जा रही है -

1- **क्रिया विधि**

गाँधी जी ने क्राफ्ट को शिक्षा में प्रमुख स्थान दिया है और इसकी शिक्षा केवल सैद्धान्तिक एवं निर्माणात्मक ज्ञान मिलें।

क्रियात्मक विधि का दूसरा रूप खेल द्वारा शिक्षा विधि है।

2- **मौखिक विधि**

मौखिक विधि के प्रयोग की संस्तुति गॉधी जी द्वारा दी गयी है। मौखिक विधि के अन्तर्गत कई विधियों को सम्मिलित करते है। जैसे प्रश्नोत्तर विधि, तर्क विधि, व्याख्यान विधि, कथा कहानी विधि। यहॉ पर यह आवश्यक है कि विभिन्न विषयों की पढ़ायी के साथ विभिन्न कक्षाओं के अनुसार यथावसर और यथावश्यक विधि प्रयोग की जाये।

3- **अनुकरण विधि**

अनुकरण विधि के प्रयोग के लिए भी गॉधी जी ने संकेत किया है कि गॉधी जी के अनुसार बच्चे अनुकरण से जल्दी सीखते है। अतएव माता-पिता और अध्यापक ऐसे आदर्श उपस्थित करें जिनको बच्चे सहज में स्वीकार करते है।

4- **सहयोगी विधि**

अनुकरण विधि के प्रयोग के लिए भी गॉधी जी ने संकेत किया है कि गाँधी जी के अनुसार बच्चे अनुकरण से जल्दी सीखते हैं अतएव माता-पिता और अध्यापक ऐसे आदर्श उपस्थित करें जिनको बच्चे सहज में स्वीकार करते है।

5- सह-सम्बन्ध की विधि

सह-सम्बन्ध की विधि के लिए बेसिक शिक्षा में अधिक जोर दिया है। क्राफ्ट शिक्षा को केन्द्र बनाया जाय और अन्य विषयों को उससे सह सम्बन्धित कर दिया जाय। इसका तात्पर्य यह है कि प्रमुख्यतः क्राफ्ट को ध्यान में रखकर ज्ञान दिया जाय तथा भाषा, विज्ञान, इतिहास, भूगोल आदि सभी विषय क्राफ्ट के विषय के सन्दर्भ में ही पढ़ाया जाय।

अन्त में शिक्षा देने के लिए संगीत के प्रयोग के लिए गाँधी जी का विचार है कि शारीरिक ड्रिल, हस्त कौशल आदि में संगीत का प्रयोग किया जाय। जिससे विषय में रूचि उत्पन्न हो और उसकी गूढ़ता दूर हो सके। नैतिक और धार्मिक शिक्षा के लिए भवन बनवाये जाये। श्रवण, मनन, निधिध्य शासन में भी प्राचीन विधियों में गाँधी का विश्वास मिलता है और इनकी ओर इनका संकेत मिल ता है। विचार के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है।

शिक्षा, शिक्षार्थी और विद्यालय के सम्बन्ध में गाँधी जी के विचार

1- शिक्षक

शिक्षक के सम्बन्ध में गांधी जी का दृष्टिकोण आदर्शवादी है। वह शिक्षक को सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्याय सहिष्णुता और परिश्रम आदि गुणों से विभूषित देखना चाहते हैं। उनके अनुसार उनमें चरित्र की महानता, क्षमाशीलता, मृदुभाषिता, कर्तव्यपरायणता होनी चाहिए। शिक्षक को बालकों की

समस्याओं को सुलझाने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। उसे बालकों पर जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। बल्कि अपने व्यक्तित्व से उन्हें प्रभावित करना चाहिए। शिक्षक का कार्यक्षेत्र कक्षा के बाहर भी हैं उन्होंने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि – ''मैंने अपने अनुभव से यह व्यक्त किया है कि शिक्षक का कार्यक्षेत्र कक्षा की अपेक्षा कक्षा से बाहर अधिक रहता है। इस दैनिक कार्य में जहॉ अध्यापक और प्रोफेसर पारिश्रमिक के लिए अध्यापन कार्य करते है वे छात्रों की कक्षा के उपरान्त वे समय नहीं दे पाते हैं आज के छात्रों के चरित्र एवं व्यक्तित्व के विकास का सबसे बड़ा दोष यही है इसलिए शिक्षकों को कक्षा के बाहर इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए कि छात्रों में सद्गुणों को विकास हो और वे अपनी समस्याओं के समाधान में समर्थ हो।''

2- शिक्षार्थी

गाँधी जी का कथन है कि बालक की शिक्षा माता के पेट से ही प्रारम्भ हो जाती है बालक का चरित्र उज्ज्वल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसके माता-पिता का चरित्र उज्ज्वल हो। गाँधीजी विद्यार्थियों के लिए सदाचार को आवश्यक मानते है। विद्यार्थियों में चारित्रिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार की शक्तियॉ होनी चाहिए। गॉधी जी विद्यार्थियों की शक्ति में असीम आस्था रखते थे और इनके विचार से स्वतंत्रता संग्राम में इनकी प्रेरणा से ही विद्यार्थियों ने महान योगदान दिया। छात्रों को स्वयं आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी होना चाहिए तथा अपना प्रत्येक

कार्य स्वयं करना चाहिए। विद्यार्थियों को स्वतंत्र तथा अच्छे वातावरण में बिना रोक-टोक के शिक्षा प्राप्त करना चाहिए। विद्यार्थियों को अनुशासित विनयी, जिज्ञासु, समाजसेवी एवं अहिंसावादी होना चाहिए।

3- विद्यालय

गॉधी जी ने आदर्श विद्यालयों के सम्बन्ध में भी अपने विचार व्यक्त किये हैं उनका कथन है कि विद्यालय प्रकृति की गोद में किसी सुरम्य ओर सुन्दर स्थलों पर होना चाहिए कि छात्रों के चरित्र का समुचित विकास हो और वे सुचारू रूप से अपना कार्य कर सके।

गॉधी जी के अनुसार विद्यालय में समस्त शिक्षा हस्त-कौशल के माध्यम से प्रदान की जानी चाहिए । विद्यालय का संगठन इस प्रकार होना चाहिए कि शिक्षार्थी आत्मनिर्भर बन सके। विद्यालय समुद ाय का केन्द्र बने तथा जहॉ विद्यार्थियों का सर्वागीण विकास हों वे समाज के पुर्ननिर्माण में योगदान दें।

अनुशासन सम्बन्धी विचार

चरित्र, हृदय की दृढ़ता और संयम में विश्वास करने वाले गाँधी जी के लिए बड़ी चीज है। वह स्वयं अनुशासित जीवन बिताते थे तो वे फिर शिक्षा के क्षेत्र में वह अनुशासन क्यों न लाये। प्रत्येक

विद्यार्थी एवं अध्यापक को वे ब्रहमचारी देखना चाहते थे। परन्तु गाँधी जी दण्डात्मक सिद्धान्त के मानने वालों नहीं है। वह प्रभावात्मक और मुक्तिवादी सिद्धान्त के पोषक थे।

स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में गाँधी जी का विचार

भारत में स्त्रियों की शिक्षा एक बड़ी भारी समस्या है। इसका कारण उनकी सामाजिक स्थिति है। समाज में पुरूष ने उन्हें केवल घर पर में रहने वाली, बच्चों की देख-रेख करने वाली ही समझा है । इस दृष्टिकोण से रहने से स्त्री का विकास नहीं हो सकता है। सामाजिक बन्धनों ने उसे ऐसा ग्रसित किया है कि वह शिक्षा पाने में असमर्थ हो रही है। गाँधी जी ने स्त्री को पत्नी, माता, मानव निर्माता एवं समाज का नेता माना है। स्त्री शिक्षा में घरेलू, ज्ञान, बालकों की शिक्षा, उनकी सेवा को प्राथमिकता देनी चाहिए।

गाँधी जी, स्त्री शिक्षा को उसी ढंग से चलाना चाहते थे जैसा कि लड़कों की शिक्षा को। अन्तर के वल इतना था कि स्त्री को घरेलू शास्त्र भी बताया जाय। इस प्रकार से शिक्षित स्त्री निश्चय ही प रवार, समाज और देश का सुधार कर सकती है और देश को आगे बढ़ा सकती है। इससे न के व ल देश की प्रगति होगी अपितु सम्पूर्ण मानवता का विकास होगा।

प्रौढ़ शिक्षा के सम्बन्ध में गाँधी जी के विचार

गॉधी जी ने प्रौढ़ शिक्षा के पाठयक्रम में उद्योग, व्यवसाय, सफाई और स्वास्थ्य रक्षा, समाज कल्याण, साक्षरता, बौद्धिक विकास, सामाजिक और नैतिक आदर्श, भावात्मक एकीकरण आदि बातों को रखा हैं। गॉधी जी का विचार है कि जन-साधारण की निरक्षरता भारत के लिए पाप है। इसे दूर अवश्य किया जाना चाहिए।

गॉधी जी जहॉ-जहॉ गये और रहे वहॉ-वहॉ प्रौढ़-शिक्षा के प्रकाश को विकीर्ण किया तथा स्त्री-पुरूष के मस्तिष्क से अंधकार को दूर किया, उसमें जागृति पैदा की, उनमें चारित्रिकता लायी और उन्हें अपनी सुषप्त शक्तियों का अनुभव कराया ताकि वह अपना अपने-अपने देश का कल्याण कर सके।

सह-शिक्षा के सम्बन्ध में गाँधी के विचार

सह-शिक्षा के सम्बन्ध में उनका कथन है कि आठ-वर्ष की अवस्था तक लड़के-लड़कियों को साथ-साथ पढ़ाया जाय। यदि अच्छी सुविधा और वातावरण हो तो सोलह वर्ष तक की आयु में उन्हें एक साथ पढ़ाया जा सकता है। समाज को ही इस बात का निर्णय लेने का अधिकार है कि सह-शिक्षा प्रदान की जाय या नही। इससे स्पष्ट होता है। कि गॉधी जी सह-शिक्षा का भार समाज पर छोड़ना चाहते थे।

जन-शिक्षा के सम्बन्ध में गॉधी जी के विचार

जन-शिक्षा का तात्पर्य है समाज के जन साधारण को शिक्षा। उस प्रकार की शिक्षा दो प्रकार से प्र दान की जाती है- एक तो अपरिपक्व बालक और दूसरे प्रौढ़ । इन दोनों की शिक्षा समाज द्वारा हो नी चाहिए। भारतीय लोग अधिकतर गॉवों में रहते है तथा गॉवों के लोग शहर की अपेक्षा अधिक पिछड़े हुए है और उन्हें शिक्षा की सुविधाएँ तथा साधन कम मिलते है। इसका ध्यान गांधी जी को था और इस विचार से उन्होंने काफी काम किया।

जन-साधारण की शिक्षा के लिए गांधीजी ने अलग-अलग प्रयत्न किये है। बेसिक शिक्षा तो केव ल बालकों एवं किशारों के लिए बनायी और प्रौढ़-शिक्षा उन लोगों के लिए जो 18 वर्ष से ऊपर हो। गॉधी जी ने गॉवों में जन-शिक्षा के प्रचार के लिए जोर दिया तथा उन्होंने विद्यार्थियों एवं अन्य समाज सेवकों को गांवों में जाने के लिए कहा और उन्होने सम्बाधित किया कि वे वहॉ जाकर जन साधारण को केवल सीखने पढ़ने से स्वतंत्र विचार के साथ रहने की शिक्षा दें। उन्हें उद्योग-धन्धों की और अग्रसर करें। इस प्रकार जन-साधारण को मानसिक तौर पर सजग किया जाये। तथा उन में चारित्रिक गुणों का विकास हों। साथ ही साथि उनमें अपनी क्षमताओं को समझने एवं समझ कर प्रयोग में लाने की अनुभूति भी करायी जाय तभी देश एवं व्यक्ति दोनों का कल्याण होगा।

धर्म-शिक्षा के सम्बन्ध में गॉधीजी के विचार

गॉधीजी धार्मिक शिक्षा को भी आवश्यक मानते थे। धार्मिक-शिक्षा के अन्तर्गत वह सम्प्रदाय विशेष की बात नहीं करते। वे साम्प्रदायिकता के प्रवल विरोधी है। धार्मिक-शिक्षा के माध्यम से वे साम्प्रदायिकता का अन्त करना चाहिते है। धार्मिक शिक्षा बालकों को चरित्रवान बनाने और उन के बहुमुखी विकास का साधन होना चाहिए। धार्मिक-शिक्षा को महत्व प्रदान करते हुए गॉधी जी ने लिखा हे कि ''यदि भारत को अपना आध्यात्मिक दिवालियापन को पोषित नहीं करना है तो नवयुवकों के लिए धर्म, शिक्षा सांसारिक शिक्षा के समान ही जरूरी है।''

गाँधी जी की वर्धा योजना (बेसिक शिक्षा योजना)

भारत सरकार अधिनियम 1935 के आधार पर सन् 1937 से भारत में द्वैत शासन को समाप्त करके प्रान्तों में उत्तरदायी शासन को स्थापित किया गया। देश के 11 प्रान्तों में से 6 में कांग्रेस मन्त्रिमण डल इस दुविधा में थे कि एक तरफ उनकों देश के पथ-प्रदर्शक गाँधी जी शिक्षा नीति को कार्यान्वित करना तथा दूसरी ओर कम से कम समय में सर्वव्यापी नि:शुल्क और अनिवार्य प्रारम्भि क शिक्षा विस्तार करना था। साथ ही उन्हें शिक्षा विस्तार के लिए पर्याप्त धनराशि की भी आवश्य कता थी। इसलिए ऐसी दशा में गॉधीजी ने अपना बेसिक शिक्षा योजना प्रस्तुत करके उनका पथ-प्रदर्शन किया था।

गॉधीजी का दृष्टिकोण

गॉधी जी अपने पत्र 'हरिजन' द्वारा शिक्षा सम्बन्धी अपने विचार बहुत दिनों से प्रकट कर रहे थे। कुछ दिन बाद उनके यही विचार लेख के रूप में शिक्षा के आधार बने। उनकी दृष्टि में बालक की शिक्षा एक उपयोगी हस्तशिल्प शिक्षा होनी चाहिए। जिस समय से वह शिक्षा प्रारम्भ करता है उसी समय से उसे उस क्षेत्र में योग्य बनाकर प्रारम्भ करनी चाहिए।

अखिल भारतीय सम्मेलन

गांधी जी ने 2 अक्टूबर 1936 में एक लेख लिखा जिसमें वर्धा में 22 और 23 अक्टूबर 1936 का एक अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन बुलाने का उल्लेख किया। इस तरह उक्त तिथियों में वर्धा में एक शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया जो कि अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन के साथ-साथ वर्धा सम्मेलन भी कहा जाता है इस सम्मेलन में देश के विभिन्न भागों से शिक्षा विशेषज्ञों राष्ट्रीय नेताओं, समाज सुधारकों और प्रान्तीय शिखा मन्त्रियों ने भाग लिया। गम्भीर विचार-विमर्श के बाद निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया।

1. देश में सात वर्ष तक सभी बालक-बालिकाओं को नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा दी जा य।
2. शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

3. उक्त अवधि में बालक की शिक्षा किसी हस्त उद्योग या उत्पादन श्रम के द्वारा दी जाय। अन्य सभी विषय उससे ही सम्बन्धित हो तथा हस्त उद्योग को चयन करते समय बालक के वातावरण को ध्यान में रखा जाय।

4. सम्मेलन में आशा प्रकट की गयी कि धीरे-धीरे शिक्षा की इस प्रणाली द्वारा अध्यापकों के वेतन का खर्च निकल आयेगा।

बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य

बुनियादी शिक्षा को लागू करने के पीछे गाँधी जी के निम्नलिखित उद्देश्य थे। ये ही बेसिक शिक्षा के उद्देश्य कहे जाते है-

1- बालकों को आदर्श नागरिक बनाना।

2- सांस्कृतिक दृष्टिकोण।

3- बालकों का सर्वागीण विकास करना।

4- आर्थिक दृष्टिकोण।

5- शिक्षा को आत्म निर्भर बनाना।

6- शिक्षा सबके लिए सुलभ करना।

7- सर्वोदय समाज की स्थापना करना।

बुनियादी शिक्षा का स्वरूप

गाँधी जी ने बुनियादी शिक्षा के स्वरूप को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया है। जो इस प्रकार से है -

1- बेसिक शिक्षा की अवधि सात वर्ष की हो। इसमें 6 से 14 वर्ष के बालक-बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा दी जायेगी।

2- शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होगी, अंग्रेजी की शिक्षा नहीं दी जायेगी।

3- शिक्षा शिल्प पर आधारित होगी। ये शिल्प स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार होगें।

4- बच्चे अच्छे शिल्पी हो सकेगें, उनके द्वारा निर्मित सामानों को बेचा जायेगा। उसी आय से विद्यालय का खर्च चलेगा।

5- शिल्प की शिक्षा यांत्रिक विधि से न देकर इस प्रकार दी जायेगीकि बालक उसके सामाजिक और वैज्ञानिक महत्व से परिचित हो जाये।

बुनियादी शिक्षा पाठ्यक्रम

गाँधी जी के अनुसार बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों को सम्मिलित करना चाहिए।

1- **बुनियादी शिल्प**

(क) कृषि (ख) कताई-बुनाई (ग) चर्मकार्य (घ) मिट्टी का काम (ड) लकड़ी का काम (च) मछली पालन (छ) फल और शाक उद्यान कार्य (ज) स्थानीय तथा भौतिक प रिस्थितियों के अनुसार कोई भी शिल्प चुना जा सकता है।

2- **भाषा**

मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, एवं देश की विभिन्न भाषाएँ। लेकिन मातृभाषा पर विशेष रूप से बल दिया गया है।

3- **सामान्य विज्ञान**

गाँधी जी ने सामान्य विज्ञान में विभिन्न प्रकार के विद्वानों को सम्मिलित किया है यथा- प्रकृति-अध्ययन, वनस्पति-शास्त्र, जीव-विज्ञान, रसायन-शास्त्र, शरीर विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान तथा महान वैज्ञानिकों की अन्वेषण कक्षाएँ आदि।

4- **सामाजिक अध्ययन**

सामाजिक अध्ययन जैसे विषय में गाँधी जी निम्नवत् विषयों को सम्मिलित करना चाहते थे जैसे - इतिहास, भूगोल, नागरिक-शास्त्र, गणित, कला-संगीत तथा चित्रकला, हिन्दी, शारीरिक शिक्षा - व्यायाम और खेलकूद, गृह-विज्ञान - केवल बालिकाओं के लिए।

बेसिक शिक्षा के गुण

बेसिक शिक्षा पद्धति के अनेक गुण है। इस पद्धति के अन्तर्गत 6 वर्षे से लेकर 14 वर्ष के सभी बालक-बालिकाओं को नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की वयवस्था की गयी है। इसमें अ पव्यय की गुजांइश नहीं है। बालक-बालिकाओं को उत्तम नागरिकता का पाठ पढ़ाया जाता है।

बेसिक-शिक्षा जीवन के घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। शिक्षा किसी हस्त उद्योग कार्य द्वारा दी जाती है। शिक्षा बालक को केन्द्र बनाकर प्रदान की जाती है। और इससे उसमे राष्ट्रीयता, स्व देश प्रेम एवं असम्प्रदायिकता की भावना पैदा होती है: यह शिक्षा देश के भावी, आर्थिक एवं सामा जिक परिस्थितियों के सर्वथा अनुकूल है।

बेसिक-शिक्षा के दोष

बेसिक-शिक्षा के कुछ कतिपय दोष भी बतलाये जाते है। बेसिक शिक्षा नगरों के लिए उपयोगी न होकर ग्रामीणों के लिए उपयोगी है। इसमें उत्पादन सिद्धान्त की अधिकता के कारण बेसिक विद्यालय कुटीर उद्योग में परिणत हो जाते है। बुनियादी शिल्प द्वारा समस्त विषयों का शिक्षण कार्य असम्भव है। इससे छात्रों का सर्वागीण विकास नहीं हो सकता है। बेसिक शिक्षा की समय-सारणी भी दोषपूर्ण हैं क्योंकि इसमें बुनियादी शिल्प के लिए तो बहुत अधिक समय निर्धारित किया गया है। शेष विषयों को बहुत कम समय दिया गया है। इसमें माध्यमिक एवं उच्च

शिखा की अपेक्षा प्राथमिक शिखा पर विशेष बल दिया गया हैं इस शिक्षा के माध्यम से औद्योगिक प्रगति रूक जाने का खतरा भी हो सकता है।

बेसिक-शिक्षा के दोष

बेसिक-शिक्षा के कुछ कतिपय दोष भी बतलाये जाते है। बेसिक शिक्षा नगरों के लिए उपयोगी न होकर ग्रामीणों के लिए उपयोगी है। इसमें उत्पादन सिद्धान्त की अधिकता के कारण बेसिक विद्या लय कुटीर उद्योग में परिणत हो जाते है। बुनियादी शिल्प द्वारा समस्त विषयों का शिक्षण कार्य असम्भव है। इससे छात्रों का सर्वागीण विकास नहीं हो सकता है। बेसिक शिक्षा की समय-सारणी भी दोषपूर्ण है। क्योंकि इसमें बुनियादी शिल्प के लिए तो बहुत अधिक समय निर्धारित किया गय ा हैं शेष विषयों को बहुत कम समय दिया गया है। इसमें माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की अपेक्षा प्राथमिक शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। इस शिक्षा के माध्यम से औद्योगिक प्रगति रूक जाने का खतरा भी हो सकता है।

अध्याय - 4

1. स्वामी विवेकानन्द जी का जीवन-परिचय

स्वामी विवेकानन्द जी की दार्शनिक विचारधारा

(1) ईश्वर

(2) आत्मा

(3) सत्य

(4) जगत्

(5) जीवन का अन्तिम लक्ष्य

3. स्वामी विवेकानन्द जी की शैक्षिक विचारधारा

(1) शिक्षा का अर्थ

(2) शिक्षा का उद्देश्य

(3) शिक्षा का पाठ्यक्रम

(4) शिक्षण पद्तियाँ

(5) शिक्षक, शिक्षार्थी, विद्यालय

(6) अनुशासन

(7) स्त्री एवं प्रौढ़-शिक्षा

(8) राष्ट्रीय-शिक्षा

(9) धार्मिक-शिक्षा

स्वामी विवेकानन्द जी का जीवन परिचय

स्वामी विवेकानन्द का जन्म 1863 ई0 में कलकत्ता महानगरी के सिमला मुहल्ला के एक बंगाली परिवार में हुआ था। इनके पिता विश्वनाथ दत्त उच्च न्यायालय के एक प्रसिद्ध वकील थे। स्वामी विवेकानन्द अपनी माँ श्रीमति भुनेश्वरी देवी के प्रथम पुत्र थे। इनका बचपन का नाम नरेन्द्र नाथ दत्त था। बचपन में नरेन्द्र नाथ बड़े ही क्रोधी, नटखट खिलाड़ी ओर अशान्त किन्तु परोपकारी थे। पांच वर्ष की अवस्था में इनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। छठें वर्ष में ये विद्यालय जाने लगे। सात वर्ष की अवस्था में इन्हें मैट्रोपोलिटन कॉलेज भेजा गया, इन्होंने एक वर्ष के अन्दर ही सारा व्याकरण कण्ठस्थ कर डाला। सोलह वर्ष की आयु में प्रथम श्रेणी में हाई स्कूल परीक्षा उत्तीर्ण किया।

हाईस्कूल पास करने के बाद नरेन्द्रनाथ ने प्रेसीडेण्सी कालेज में प्रवेश लिया। कालेज जीवन से ही आध्यात्मिक तेज एवं ज्ञान ज्योति से किशोर नरेन्द्रनाथ दिव्यानुभूति करने लगे। इसी कारण उनके मित्र उन्हें पवित्रवादी कहकर पुकारने लगे। नरेन्द्रनाथ के आध्यात्मिक जीवन के विकास में उनके विद्यालय के प्राचार्य हेस्टी का विशेष योगदान रहा। हेस्टी महोदय ने नरेन्द्र नाथ के विषय में लिखा है कि - ''नरेन्द्रनाथ वास्तव में प्रतिभाशाली है। मैं बहुत दूर-दूर घूमा हूँ किन्तु ऐसी योग्यता एवं सम्भाषण वाले किसी बालक को मैंने नहीं देखा है। जर्मनी विश्वविद्यालय में

दर्शन-शास्त्र के छात्र भी ऐसे नहीं है। यह निश्चित रूप से जीवन में यश प्राप्त करेगा।'' हेस्टी की यह बचपन में कही गयी बात अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई।

एक दिन बड़र्सवर्थ की कविता पढ़ाते समय प्राचार्य हेस्टी ने नरेन्द्रनाथ का ध्यान श्री रामकृष्ण परम्हंस की सौम्यता की ओर आकर्षित किया था। उन्हीं के प्रेरणा से नरेन्द्रनाथ स्वामी जी को देखने के लिए विहवल् हो उठे। नवम्बर 1881 को उन्होंने कलकत्ता स्थित दक्षिणेश्वर के मंदिर में स्वामी जी को देखने गये। स्वामीजी नरेन्द्रनाथ से बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने इन्हें पुनः बुलाया भी था लेकिन इण्टर की परीक्षा में व्यस्त हो जाने के कारण नरेन्द्र नाथ स्वमी जी के पास नहीं जा सके। परीक्षा बाद पुनः स्वामी जी से मिले।

सन् 1882 में नरेन्द्रनाथ ने बी0ए0 में प्रवेश लिया और स्वामी जी का सत्संग लाभ भी करते रहे। यह स्वामी जी से अब इतने प्रभावित हो चुके थे कि इनके जीवन की धारा ही बदल गयी। इन्होंने विवाह करने से इन्कार कर दिया और सन्यासी का जीवन बिताने पर कटिबद्ध हो गये। 1884 ई0 में पिता का स्वर्गवास हो जाने के नाते परिवार की जिम्मेदारी इन पर आ गयी। ये स्वामी जी के शिष्य बन चुके थे अतः स्वामी जी ने मॉ काली के माध्यम से इनका आर्थिक संकट दूर किया फिर भी इन्हें परिवार तथा रिश्ते के लोगों ने छोड़ दिया। इनके ऊपर इन बातों को कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसी बीच स्वामी जी ने बहुत से शिष्यों को दीक्षित किया और अपना उत्तराधिकारी नरेन्द्र नाथ को ही स्वीकार किया। दीक्षित होने पर नरेन्द्र नाथ विवेकानन्द कहलाये।

सन 1886 ई0 में स्वामी राम कृष्ण परम्हंस का महाप्रस्थान हो गया। महाप्रस्थान के तीन दिन पूर्व ही उन्होंने विवेकानन्द से कहा कि - ''आज अपना सब तुम्हें देकर मैं रंक वन गया हूँ। मैंने योग द्वारा जिस शक्ति को तुम्हारे अन्दर प्रविष्ट किया है, उससे तुम अपने जीवन में महान कार्य करोगें। अपने इस कार्य को पूर्ण करने के बाद ही तुम वहाँ जाओंगे जहा से आये हो।''

नरेन्द्रनाथ ने उसे स्वीकार किया और स्वामी विवेकानन्द के रूप में अपने गुरू के उपदेशों को अपने जीवन में आजीवन उतारा तथा विश्व भर में प्रसारित भी किया। सन् 1886 से 1902 ई0 तक सारे विश्व में अपने गुरूदेव को प्रचारित एवं प्रसारित करते हुए स्वामी विवेकारनन्द जी 4 जुलाई 1902 को गुरूदेव की वाणीमय हो गये।

सन् 1886 ई0 में गुरू परम्हंस कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरू जी के कार्य को सम्पादित करने हेतु बराह नगर में एक आश्रम की स्थापना की। वहीं उन्होंने दो वर्षो तक तपस्या की। सन् 1888 ई0 में विवेकानन्द जी ने कलकत्ता छोड़कर भारत भम्रण करना प्रारम्भ किया। काशी, अयोध्या, लखनऊ, आगरा, मथुरा, वृन्दावन, हाथरस होते हुए हिमालय तक की यात्रा की।

सन् 1890 ई 0 में स्वामी जी शारीरिक अस्वस्थता के कारण वराह आश्रम लौट आये। वहीं रहकर एक वर्ष तक इन्होंने जप-तप, संयम, ध्यान आदि की भी समीक्षा की। इसी बीच इन्हों ने सिद्धि प्राप्ति की उत्कण्ठा से माँ शारदा अर्थात् गुरू पत्नी से ही आशीर्वाद मांगा, माँ ने आशीर्वाद

दिया बेटा तुम सिद्ध काम होकर लौट आओं। तुम्हारे भीतर ही तो श्री ठाकुर अर्थात् राम कृष्ण पर महंस स्वयं ही निवास कर रहे है। माँ का आशीर्वाद लेकर स्वामी जी हिमालय की ओर सिद्धि प्राप्ति हेतु चले गये।

ब्रहम ज्ञान की अनुभूति करके स्वामी जी पुनः वापस लौट आये। सन् 1891 ई0 में इन्होंने राजपूताना का भ्रमण किया। 1892 में ये दक्षिण भारत की यात्रा पर निकल गये। यात्रा करते हुए स्वामी जी कन्याकुमारी पहुँचे, वहाँ समुद्र के किनारे एक चट्टान पर एक अद्भुत दिव्य अनुभुति हुई। वहीं उन्होंने देश सेवा और दीन-हीन उपेक्षित जनों के कल्याण का पत्र लिया। वहाँ से स्वामी जी मद्रास गये। मद्रास के लोगों ने स्वामी जी से प्रभावित होकर उन्हें विश्वधर्म सम्मेलन अमेरिका में भेजने हेतु पर्याप्त मार्ग व्यय दिया। 31 मई 1893 को स्वामी जी ने विष्व धर्म सम्मेलन के लिए प्रस्थान किया। 11 सितम्बर 1893 को स्वामी जी ने विश्वधर्म सम्मेलन में भाग लिया उनका वेदा न्त पर अभूतपूर्व व्याख्यान हुआ।

स्वामी जी ने अमेरिका में विश्वधर्म के विभिन्न पक्षों पर भाषण दिया इसके साथ ही साथ विचार-विमर्श किया गया तथा वेदान्त सोसाइटी की स्थापना किया। सन् 1895 में स्वामी जी इंग्लैण्ड चले गये। वहाँ उन्होंने वेदान्त पर भाषण दिया। फिर वे इटली, स्विटजरलैण्ड, जर्मनी और फ्रान्स आदि देशों में घूमे। सन् 1896 ई. में स्वामी जी पुनः इंग्लैण्ड गये तथा धर्म का प्रचार-प्रसार किया। स्वामी जी 1897 ई0 में लंका लौटे और 1898 ई0 में हिमालय की ओर चले गये।

वहाँ अमरनाथ में उन्हें शिव एवं काली के दर्शन हुए। वहाँ से लौटकर स्वामी जी कलकत्ता के पास वेलूर नामक स्थान पर राम कृष्ण मिशन की स्थापना की। स्वामी जी अल्मोड़ा से 75 किमी0 की दूरी पर मायावती में एक अद्वैत आश्रम की स्थापना की। दोनों मठों की स्थापना के बाद ये पुनः अमेरिका चले गये। 1900 ई0 जुलाई माह में स्वामी जी विश्वधर्म इतिहास सम्मेलन में भाग लेने पेरिस गये।

सन् 1902 ई0 में स्वामी जी बोध गया एवं काशी गये। काशी में भी वे एक मठ स्थापित करना चाहते थे, किन्तु 4 जुलाई 1902 ई0 शुक्रवार को स्वामी जी निर्वाण प्राप्त कर गये। इस प्रकार अपने 39 वर्ष की अल्पायु में ही स्वामी जी हिन्दु धर्म के प्रसार तथा वेदान्त के प्रचार हेतु महान कार्य किया जो साधारण जन के बूते की बात नहीं।

स्वामी विवेकानन्द की दार्शनिक विचारधार

विवेकानन्द एक वेदान्ती थे और उनका वेदान्त एक जीवन सिद्धान्त था। वेदान्त का सामान्य अर्थ है वेद का अन्त अर्थात् वेदों का अन्तिम भाग अथवा वेदों का सार। वेद के तीन भाग माने जाते है-1-वैदिक मन्त्र 2-ब्राहमण 3- उपनिषद्।

इस प्रकार वेद का अन्तिम भाग उपनिषद ही वैदिक साहित्य का अन्तिम सहित्य है। उपनिषदों को वेद का गूढ़ रहस्य माना जाता है। इसी कारण इसे वेद का अन्त अर्थात् वेदान्त कहते हैं। वेदान्त के तीन रूप हैं।

1- द्वैत 2- विशिष्टता-द्वैत एवं 3- अद्वैत

सवामी जी अद्वैत समर्थक थे। उनके अनुसार ये तीनों वेदान्त दर्श, दर्शन के तीन चरण है और अन्तिम लक्ष्य अद्वैत की अनुभति है। इस प्रकार जो ज्ञान यथार्थ व वास्तविकता की ओर ले जाता है वही वेदान्त हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि वेदान्त का अभिप्राय और जगत के स म्बन्ध में इस अन्तिम सत्य और ज्ञान की प्राप्ति है जिसे व्यक्ति जन्म से मृत्यु तक प्राप्त करता है त था जिससे जीवन के दु:ख दूर होते है। जन्म-मृत्यु के बन्धन कटते है और मोक्ष मिलता है।

स्वामी जी क वेदान्त दर्शन में सभी धार्मिक विचार निहित है। इनका वेदान्त दर्शन ईश्वस्कृत है। इस प्रकार इस पर किसी का वैयक्तिकता की तनिक ीी छाप नहीं मिलती है।

स्वामी जी ने ईश्वर आत्मा, सत्य, जगत, जीवन का अन्तिम लक्ष्य आत्मानुभूति के सम्बन्ध में निम्न दार्शनिक विचार दिये है – मन एक लघु एवं विचित्र कार्य करने वाले वस्तु है। जबकि आत्मा का अपना अलग व्यक्तित्व है। आत्मा की अनन्तता का अनुभव करना मुक्ति की प्राप्ति करना है। आत्मा एक मुक्त सत्ता है। जिस ढंग से व्यक्ति को उसकी सिद्धि प्राप्ति होती है। स्वामी जी का विचार है कि – ''आत्मा मनुष्य के भीतर यथार्थ मनुष्य है। यही आत्मा जड़ को अपने यन्त्र के रूप में अपने अन्तःकरण के रूप में चलाती फिराती है।''

सत्य

स्वामी विवेकानन्द जी का विचार है कि ''जो कुछ भी पूर्णता के लिए होता है वह सत्य है । सत्य है। प्रेम सत्य है और घृणा असत्य हैं क्योंकि घृणा मनुष्य के अन्दर अलगाव जैसी भावना उत्पन्न करती है और नष्ट करती है। प्रेम बांधता है। एकता लाता है। प्रेम ही अस्तित्व है, ईश्वर स्वयं है। और यह तो प्रकट है केवल उसी प्रेम का रूप है जो कम या अधिक अभिव्यक्त होता है। ''

स्वामी जी संसार को मिथ्या नहीं मानते हैं। उनके लिए जगत मिथ्या नहीं है। जगत की भी सत्ता है। उसका भी अस्तित्व है और वह भी सत्य है। जिस पर अनेक पर्दे माया के रूप में पड़े हे । जगत एक भ्रम और माया है। स्वामी जी माया और ईश्वर दोनों के बीच मनुष्य को विवेकी बन

ने की राय देते है। क्योंकि विवेक ही माया अथावा भ्रम को दूर कर ईश्वर की अनुभूति करा सकता है।

जगत

जिस प्रकार कोई जादूगर अपनी माया शक्ति द्वारा विचित्र सृष्टि करने में समर्थ होता है। व ही दशा ईश्वर की भी है। स्वामी जी जगत और ब्रहम में कार्यकरण सम्बन्ध मानते है। उनके अनुसार जगत और ब्रहम में एकता मिलती है। ब्रहम जगत का कारण है और जगत उसकी प्राप्ति है। जिस प्रकार मानव शरीर के भीतर आत्मा ईश्वर अंश है ठीक उसी प्रकार जगत के भीतर जित नी आत्मायें है उसमें भी ब्रहम का वास है। इस प्रकार ज्ञान जगत के भीतर अज्ञात रूप में ईश्वर विद्यमान है। स्वामी जी जगत को दो प्रकार मानते है - प्रथम बाहय जगत तथा द्वितीय अर्न्तजगत।

बर्हिजगत के अनतर्गत हमें ज्ञात है कि इस जगत का नाश होने पर भी यह अपने स्वरूप अर्थात ब्रहम में मिल जाता है। समग्र प्रकृति मानव एवं जड़ प्रकृति में क्रय संकोच और क्रय विका स की क्रिया अनन्तकाल से चल रही है और चलती रहेगी।

जगत का द्वितीय रूप है- अर्न्तगत ! इसका ज्ञान वाहय जगत के विश्लेषण द्वारा ही होता है । स्वामी जी ने इसे ब्रहमवाद के नाम से पुकारा है। इन्हीं के शब्दों में - ''हमने देखा है कि पहले मनुष्य की यह स्थूल देह है उसके पीछे सूक्ष्म शरीर है और उसके पीछे आत्मा विद्यामान है। स्थूल

देह की सारी शक्तियॉ मन से प्राप्त होती है और स्वयं मन आत्मा के आलोक से आलोकित है।''

इस मानव आत्मा के आगे विश्वात्मा है। इस प्रकार अर्न्तजगत का क्रय सूक्ष्म से सूक्ष्मतर की ओर बढ़ता है।

आत्मानुभूति

स्वामी विवेकानन्द जीवन का अन्तिम लक्ष्य आत्मानुभूति को मानते है। इनके अनुसार अद्वैतवाद को स्वीकार करते हुए मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य आत्मानुभूति है। यह आत्मानुभूति आत्मज्ञान अथवा मुक्ति, ज्ञान, योग, राजयोग, भक्तियोग अथवा कर्मयोग द्वारा प्राप्त की जा सकती है। आत्मानुभूति प्राप्त करने के लिए मनुष्य के लिए मनुष्य को 'सात' सीढ़ियॉ पार करना होता है जो निम्नलिखित है -

1- सम, दम में गति लाना -

इन्द्रियों पर नियंत्रण के साथ ही साथ मन पर नियंत्रण शम, दम की प्रथम श्रेणी है।

2- तितिक्षा-सहनशीलता -

जीवन के सभी प्रकार के अनुभवों को बिना प्रवाह के सहन करना।

3- उपरति -

जो कुछ भी प्राप्त हो उसी का उपयोग किया जाय न कि भोग विषयों का चिन्तन।

4- **श्रद्धा-**

ईश्वर और धर्म में अटूट विश्वार और उन्हें पाने की महती उत्सुकता का नाम ही श्रद्धा है।

5- **समाधान-**

ईश्वर में चित्त को निरन्तर लगाने का अभयास ही समाधान है।

6- **मुमुक्षत्व -**

मनुष्य की मुक्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा की दशा मुमक्षत्व है और मनुष्य मुमुक्ष है।

7- **नित्यानित्य विवेक -**

यह वह सीढ़ी है जिसमें सत्य मिथ्या, शाश्वत्

नश्वर के आत्मा के स्वरूप आदि का ज्ञान होता हैं

शैक्षिक विचारधारा

स्वामी विवेकानन्द एक आदर्शवादी, सच्चे वेदान्ती शिक्षा मनीषी थे। उन्होंने व्यापक शिक्षा दर्शन का सूत्रपात किया। उनके शैक्षिक विचार सैद्धान्तिक रूप में उन पर रचित संकलित विवेका नन्द साहित्य के दस खण्डों, विवेकानन्द संचयन तथा उनकी प्रमुख रचनाओं में खोजे जा सकते है । इनका शिक्षा दर्शन बड़ा व्यापक तथा व्यावहारिक है। उन्होंने अपने सैद्धान्तिक विचारों को भी

श्री राम कृष्ण आश्रम और अद्वैत आश्रम जैसी विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से व्यावहारिक रूप में साकार किया है। स्वामी जी के शिक्षा दर्शन एवं शैक्षिक विचारों को कुछ निम्नलिखित शीर्षकों के द्वारा स्पष्ट रूप से अध्ययन किया जा सकता है।

शिक्षा का अर्थ

स्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा का व्यापक और व्यावहारिक अर्थ लगाया है। उन्होंने शिक्षा की परिभाषा देते हुए लिखा है कि - ''व्यक्ति के अन्दर निहित पूर्वता का उद्घाटन ही शिक्षा है।'' स्वामी जी के विचार से शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि - ''तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत सी बातें ठूस दी जाय कि अर्न्तद्वन्द्व होने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर पचा न सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन निर्माण कर सकें। वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है। कहा भी है कि वह गधा जिसके ऊपर चन्दन की लकड़ियों को बोझ लाद दिया गया हो वह बोझ की ही बात जान सकता है चन्दन के मूल्य को वह नहीं समझा सकता है।

स्वामी जी के शब्दों में - ''हमारा प्रयोजन इसी शिक्षा से है जिसके द्वारा शरीर गठन हो, मन का बल बढ़े, बुद्धि का विकास हो, मनुष्य स्वावलम्बी हो सके।'' वे शिक्षा को जीवन निर्माण का स्रोत मानते थे। शिक्षा के द्वारा बालक का स्वाभाविक एवं पूर्ण विकास चाहते थे। वे चरित्र में गुणात्मक सुधार को शिक्षा की संज्ञा देते थे।

शिक्षा के उद्देश्य

स्वामी जी के शिक्षा का आदर्श है - पूर्ण मानव का निर्माण इसी आदर्श के आधार पर इन होंने शिक्षा की परिभाषा भी प्रस्तुत की हैं शिक्षा मानव के निहित पूर्णता का प्रकाशन है। शिक्षा का मूल लक्ष्य है मानव में ईश्वर की उपस्थिति की अनुभूति कराना इसी अभीष्ट की पूर्ति हेतु सवामी जी ने शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य बतलाया है -

1- शारीरिक विकास का उद्देश्य -

स्वामी जी ने उपनिषदों के वलिष्ठ बनने के उद्देश्य को स्वीकार करके आजीवन व्यायाम, खेल एवं योगाभ्यास के माध्यम से उसे अपने जीवन में उतारा था। वे अपने विद्यार्थियों एवं भावी नागरिकों को भी स्वस्थ शरीरधारी एवं वलिष्ठ देखना चाहते थे। वे कहते थे संसार में यदि कोई पाप है तो वह दुर्बलता है। दुर्बलता का परित्याग करो। उपनिषद् की महान शिक्षा यही है। इसलिए शारीरिक विकास को स्वामी जी ने शिक्षा का प्रथम उद्देश्य माना हैं

2- मानसिक विकास व प्रतिभा जागरण का उद्देश्य -

स्वामी जी सत्य को स्वीकार करते थे। मनुष्य में प्रतिभा जागरण आवश्यक है। प्रतिभा से ही ज्ञान और ज्ञान से भक्ति एवं योग सम्भव है। अतः उन्होंने विद्यार्थियो के मानसिक एवं बौद्धिक

उन्नयन को शिक्षा का द्वितीय महत्वपूर्ण उद्देश्य माना। ये वैयक्तिक भेदों को ध्यान में रखकर इस प्रकार का विकास करना चाहते थे।

3- चरित्र निर्माण का उद्देश्य -

स्वामी विवेकानन्द चरित्र निर्माण को शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ उद्देश्य मानते थे। उनका विश्वास था कि मानव विचारों का चरित्र से घनिष्ठ सम्बन्ध हे। व्यक्ति का जैसा विचार होता है वैसा ही चरित्र भी। अतः उत्तम विचारों एवं संस्कारों के सृजन हेतु उन्होंने चरित्र निर्माण के उद्देश्य भी कहा जा सकता है।

4- धार्मिक शिक्षा का उद्देश्य -

स्वामी जी धर्म को मानव की आन्तरिक निधि मानते थे। उन्होंने धार्मिक शिक्षा को शिखा का महत्वपूर्ण उद्देश्य घोषित किया। धार्मिक शिक्षा द्वारा वह व्यक्ति में आत्मविश्वास, आत्मश्रद्धा, आत्मनिर्भरता, आत्मत्याग, मानवता, सहयोग एवं प्रेम तथा विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास करके दिव्य मानव का सृजन करना चाहते थे।

5- जीविकोपार्जन का उद्देश्य-

स्वामी जी प्रचलित शिक्षा को व्यर्थ मानते थे। क्योंकि वे जीवनोपयोगी तथा आत्मनिर्भर बनाने में असक्षम थे। इसलिए उन्होंने विद्यार्थियों की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु जीवको

पार्जन शिक्षा का महत्पूर्ण उद्देश्य माना था। वे विद्यार्थियों में कृषि उद्योग, तकनीकी ज्ञान एवं व्यावसायिक शिक्षा के माध्यम से इतनी सामर्थ्य पैदा करना चाहते थे कि वे शिक्षा द्वारा आत्मनिर्भर ता तो पाय ही, साथ ही साथ शोषण से बचते हुए समाज और राष्ट्र का भी कल्याण करें।

6- विश्वबन्धुत्व की भावना के विकास का उद्देश्य -

वसुधैव कुटुम्बकम् में स्वामी जी विश्वास करते थे। इस भावना का विकास करके वे विश्व बन्धुत्व प्रदायी शिक्षा द्वारा ज्ञान प्रदान करना चाहते थे। उनका विश्वास था कि इसी भावना के द्वारा विद्यार्थियों के मानस में ये भाव जगाये जा सकते हैं कि चींटी से लेकर मनुष्य तक सभी में एक सी आत्मा विद्यमान है। सभी में एक ही परम् शक्ति स्थित है। सभी उसी दिव्य शक्ति से प्रकाशित है। शिक्षा द्वारा वह ये सब बोध करना चाहते थे कि विश्व के प्रति हमारा बहुत बड़ा कर्तव्य है। हम उसके ऋणी है, वह हमारा ऋणी नहीं है। यह बड़े भाग्य की बात है कि हमें विश्व के प्रति कुछ करने का अवसर मिल सके।

स्वामी जी सलाह देते है कि हृदय कोष जागृत करों तभी ब्रहम की अनुभूति होगी। हृदय प क्ष की शिक्षा वास्तव में विश्व बन्धुत्व की शिक्षा के उद्देश्य द्वारा ही सम्भव है।

इस प्रकार स्वामी जी सच्चे अर्थो में वेदान्त की व्यावहारिक शिक्षा सादृश देना चाहते थे। उनकी शिक्षा व्यक्ति का सर्वागीण विकास करने वाली पूर्णता की अभिव्यक्ति तथा आत्मा की अनु भूति थी।

शिक्षा का पाठ्यक्रम

स्वामी विवेकानन्द ने पाठ्यक्रम का कोई संगठित स्वरूप प्रस्तुत नहीं किया है। हॉ यत्र-तत्र उनके व्याख्यानों से उसे अवश्य निकाला जा सकता है। इसी कारण उनके पाठ्यक्रम में यह संकेत नहीं मिलता है कि किसे क्या-क्या और कितना पढ़ाया जाय। उन्होंने दार्शनिकता की पृष्ठभुमि पर ही अपनी शिक्षा का पाठ्यक्रम निश्चित किया है। वे व्यक्ति को लौकिक और पारलौकिक दोनों जीवन के लिए तैयार करना चाहते थे। यही कारण है उनकी शिक्षा व्यवस्था में दोनों का सामन्जस्य मिलता है। इनका पाठ्यक्रम मनोवैज्ञानिक है जो रूचि, योग्यता एवं आवश्यकता के सिद्धान्तों पर आधारित है।

लौकिक जीवन की तैयारी हेतु सवामी जी ने निम्नलिखित विषयों को पढ़ाने की सलाह दी है -

भाषा-मातृभाषा, प्रादेशिक भाषा, तथा अंग्रेजी औद्योगिक

विषय, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र

गणित, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र

गणित, मनोविज्ञान, विज्ञान तकनीकी अथवा फलयन्त्रों की

शिक्षा, समाज सेवा एवं राष्ट्र सेवा, व्यायाम तथा एवं

संगीत - अभिनय

आध्यात्मिक व पारलौकिक जीवन की तैयारी हेतु स्वामी जी न धर्म, दर्शन, हिन्दू-धर्म, वेदान्त, उपनिषदों की शिक्षा, उपदेश, पुराण, श्रवण, धर्मगीत, कीर्तन एवं सत्संग का ज्ञान आवश्यक माना जाता है। स्वामी जी ने धार्मिक - शिक्षा, स्त्री शिक्षा, सच्ची शिक्षा के अन्तर्गत सिखाये जाने वाले विषयों का वृहद विश्लेषण किया है। इस प्रकार से वे व्यापक पाठ्यक्रम के हिमायती थे। विश्व के सभी विषयों को अपने पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक एवं व्यवहारिक ढंग से स्थान देना चाहते थे ।

शिक्षण-पद्धतियाँ

स्वामी जी ने निम्नलिखित पद्धतियों के माध्यम से शिक्षा देने की बात कहा है -

1- ध्यान केन्द्रीकरण पद्धति-

स्वामी विवेकानन्द ने इसे ज्ञान प्राप्ति का सर्वोत्तम साधन माना है। उनका विश्वास था कि जीवन का सम्पूर्ण सफलता ध्यान केन्द्रीकरण द्वारा ही सम्भव है। वे दो प्राकर की ध्यान एकाग्रता

बतलाते हैं – प्रथम अल्पकालिक एकाग्रता, द्वितीय दीर्घ कालिक व जीवन पर्यन्त चलने वाली एकाग्रता। विश्व के महान वैज्ञानिकों एवं दार्शनिकाकें ने प्रथम कोटि के एकाग्रता को अपनाते है। स्वामी जी महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य, गाँधी जी, गुरूराम कृष्ण परमहंस द्वितीय कोटि की एकाग्रता की मूर्ति रहे है। प्रथम कोटि की एकाग्रता में व्यक्ति किसी समस्या पर ध्यान केन्द्रित करता है और जब तक उसका निराकरण नहीं कर लेता तब तक वह किसी समस्या पर विचार नहीं करता। दिन -रात वह अपनी ही समस्या में उलझा रहात है। लेकिन द्वितीय कोटि की एकाग्रता में व्यक्ति अपने समस्त स्वार्थो से विमुख होकर सार्वजनिक हितों के निमित्त होकर सत्य की खोज करता है।

स्वामी विवकानन्द ध्यान केन्द्रीकरण को ज्ञानअर्जन की सर्व प्रमुख आवश्यकता मानते हुए कहते है कि – ''केवल एक ही मार्ग है जिसके द्वारा ज्ञान को अर्जित किया जा सकता है। केन्द्रीकरण से शक्ति और वल की उपलब्धि होती है ।'' मानव के मन की शक्ति की कोई सीमा नहीं है ध्यान के केन्द्रीकरण की शक्ति जितनी धनी होगी किसी बात को उतनी अधिक शक्ति से ग्रहण किया जा सकता है।

इस प्रकार स्वामी जी केन्द्रीकरण शक्ति को ज्ञान के खजाने की कुंजी मानते है। वे स्पष्ट लिखते है कि – ''यदि मुझे फिर से शिक्षा ग्रहण करनी पड़े तो मैं तथ्यों का अध्ययन न करूँ मैं तो ध्यान को केन्द्रित करने की शक्ति तथा निस्पृदता का विकास करूँ और तर्कपूर्ण साधन के द्वारा अपनी इच्छानुसार तथ्यों का संग्रह करूँ।'' जीवन की सफलता के लिए यही आवश्यक है और

पशु तथा मानव में भेद भी उत्पन्न करती हैं। इस केन्द्रीकरण के लिए स्वामी जी ने अनेक साधन बताएँ है- ब्रहमचर्य, एकान्त, चिन्तन, ध्यान और योग।

प्रत्येक प्रकार की शिक्षा हेतु यह ध्यान केन्द्रीकरण की पद्धति अत्युत्तम है। आज की शिक्षा की दुर्गति की जड़ एकाग्रता एवं योग का अभाव ही है। जिसके फलस्वरूप विद्यार्थियों में एकाग्रता ओर आत्मविश्वास नहीं पनप पाता है। इसी से शिक्षा आज अधोगति की ओर तेजी से बढ़ती जा रही है।

2- अनुकरण-पद्धति-

स्वामी जी का विचार है कि विद्यार्थी अनुकरण द्वारा अधिक सीखते है। वे कहते है कि अध्यापक के व्यक्तिगत प्रभाव के बिना कोई शिक्षा संभव नहीं है। इसलिए वह गुरू-गृह में गुरू के सानिध्य में शिक्षा देने की बात कहते है। स्वामी जी कहते है कि छात्र अपनी बाल्यावस्था से ही ऐसे गुरू के साथ जिसका चरित्र जाज्वल्यमान है और छात्र के समक्ष जो उच्चतम् त्याग का उदाहरण हो। इस प्रकार स्वामी जी ने अन्धानुकरण के स्थान पर श्रद्धा एवं विवकपूर्ण अनुकरण पद्धति पर विशेष जोर दिया है।

3- मौखिक-पद्धति-

मौखिक पद्धति के अन्तर्गत स्वामी जी ने उपदेश, व्याख्यान विचार-विमर्श, तर्क आदि पद्धतियों को स्थान दिया है। उनका यह मानना हे कि - ''शिक्षा से मेरा आशय गुरू गृह बासु से हे। ' 'उक्त शिक्षण पद्धतियों के प्रयोग का संकेत देता है कि गुरू-गृह में रहकर ब्रहमचारी, गुरू जी के उपदेश, व्याख्यान आदि पहले से सुनते थे फिर चिन्तन-मनन के पश्चात् विचार-विमर्श एवं तर्क के द्वारा अपने ज्ञान की पुष्टि करते थे। सचमुच यही शिक्षा की सच्ची पद्धति है। जिसका स्वरूप आज गिरकर व्याख्यान तक ही आज सीमित रह गया है।

4- निर्देशन एवं परामर्श पद्धति-

स्वामी जी व्यक्तिगत समस्याओं के समाधानार्थ निर्देशन एवं परामर्श को एक उत्तम पद्धति मानते थे। इस पद्धति से जहॉ एक ओर पारस्परिक सम्बन्ध दृढ़तम होते है। वहीं दूसरी और सहायोग की भावना द्वारा कार्य सरलता एवं मितव्ययता से समाप्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त गुरू के आध्यात्मिक परिपक्व व्यक्तित्व से अपरिपक्व व्यक्तित्व वाला छात्र भी पूर्ण लाभान्वित होता था। फलतः छात्र का संर्वाग विकास होता था।

5- क्रिया-पद्धति-

स्वामी जी ने शारीरिक-क्रिया, खेलकूद, व्यवसायिक तकनीकी एवं प्रायोगिक तथा वैज्ञानिक विषयों के शिक्षण में क्रिया पद्धति को अपनाने की सलाह दी थी। वास्तव में बिना क्रिया के ज्ञान स्थायी नहीं बन पाता है।

6- प्रदर्शन एवं प्रयोग पद्धतियाँ-

स्वामी जी विज्ञान एवं तकनीकी विषयों के सफल शिक्षण हेतु उक्त दोनों पद्धतियों का समर्थन करते थे। वेदान्त व्यवहारिक दर्शन है यही कारण है कि सच्ची एवं व्यवहारिक शिक्षा हेतु स्वामी जी ने प्रदर्शन और प्रयोग को आवश्यक माना है। वास्तव में प्रदर्शन और प्रयोग ही व्यवहारिक शिक्षा के आधार है इनके बिना ज्ञान में स्थायित्व असम्भव है।

7- भ्रमण-पद्धति-

स्वामी जी भ्रमण को अत्यन्त उपयोगी पद्धति मानते है। उनका विचार है कि भ्रमण से सम्पर्क ज्ञान, अनुभव एवं निरीक्षण शक्ति बढ़ती है। इसी पद्धति द्वाराआज सेवा एवं विश्व-बन्धुत्व की भावना का विकास किया जा सकता है। इसलिए जन-शिक्षा हेतु उन्होंने सन्यासियों को द्वार-द्वार जाकर शिक्षा देने का उपदेश किया था।

8- सत्संग-

अपने गुरूदेव राम कृष्ण परमहंस के ही सत्संग से नरेन्द्रनाथ स्वामी विवेकानन्द बने थे। सत्संग के प्रभाव से ही मठों और मिशनों की स्थापना हुई थी। स्वामी जी सत्संग को वास्तविक ज्ञान का आधार मानते है।

शिक्षक

स्वामी विवेकानन्द गुरू गृह प्रणाली के प्रबल समर्थक थे। वे गुरू का शिष्य में और शिष्य का गुरू में दिव्य रूप देखना चाहते थे। उनका अध्यापक बाल मनोविज्ञान वेत्ता और लौकिक तथा पारलौकिक विद्या में निष्णात है। गुरू का कार्य है बच्चे में उपस्थित ज्ञान को जागृत करना न कि अनावश्यक ज्ञान को ठूसना। स्वामी जी कहते है कि - ''सच्चा गुरू वह है जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति शिष्य की प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने में लगा दें।'' बिना सहानुभूति के हम भली प्रकार नहीं पढ़ा सकते। अध्यापक का दयित्व है कि वह शिष्यों में अनन्त धर्य, उत्साह एवं साहस उत्पन्न करें। ऐसा करने से वह शिष्यों का पूर्ण विकास कर सकता है। इस प्रकार स्वामी जी अध्यापक को एक माली के रूप में देखते है। जो विद्यार्थी रूपी पौधे का विकास कुशलता के साथ करता है। शिक्षक में निम्नलिखित गुणों का होना परमावश्यक माना जाता है। यथा - निखरा व्यक्तित्व, त्याग

की भावना, निःस्वार्थ सेवा, परोपकारी प्रवृत्ति, शिक्षण तथा शिष्यों के प्रति अगाध श्रद्धा-क्षमा-शीलता, धैर्य, धार्मिकता, मानव कल्याण एवं विद्यार्थी के सेवक की भावना आदि।

शिक्षार्थी

स्वामी विवेकानन्द विद्यार्थी में निम्नवत् गुणों का होना आवश्यक मानते है - ''जिज्ञासा ज्ञान-पिपासा, उत्साह, पवित्रता, इन्द्रिय संयम, अध्यवसाय, सहनशीलता, एकाग्रता, उत्तम चरित्र तथा गुरू की विश्वासपात्रता आदि।

स्वामी जी के अनुसार गुरू-भक्ति ज्ञान का तीव्र एवं सर्वश्रेष्ठ साधन है बिना गुरू-भक्ति के विद्यार्थी सच्चा ज्ञान हीं प्राप्त कर सकता है।

विद्यालय

स्वामी विवेकानन्द के विद्यालय सम्बन्धी विचार बहुत ही सीमित रूप में मिलते है। उन्होंने शिक्षा को गुरू सहवास की संज्ञा दी है। इससे स्पष्ट है कि वे प्राचीन वैदिक कालीन गुरू आश्रम के समर्थक थे, और त्यागियों द्वारा ही शिक्षा कार्य सम्पन्न कराना चाहते थे। उनके गुरू-गृह की निम्नलिखित विशेषताएँ मानी जा सकती है-

1- गुरू-गृह एकान्त जंगलों में स्थित होंगे।

2- गुरू-गृह में चरित्रनिष्ठ गुरू होंगें।

3- विद्यार्थी मेधावी, चरित्रनिष्ठ एवं श्रद्धालू होंगे।

4- ये विद्यालय विद्यार्थियों की बहुमुखी प्रतिभा के केन्द्र होंगे।

5- इसमें अध्यापक-शिक्षा की व्यवस्था होगी।

6- यहाँ लौकिक तथा परालौकिक शिक्षा प्रदान की जाती है।

7- आत्मोक्ष एवं विश्वसेवा इन संस्थाअें का मूल कार्य है।

अनुशासन

स्वामी जी गुरू एवं शिष्य दोनों में आत्मानुशासन को आवश्यक मानते है। उनका विचार है कि गुरू स्वयं अनुशसित रहे तभी उसके व्यवहार ओर आचरण से प्रभावित होकर छात्र भी अनुशासित रहेंगे। यहाँ गुरू के प्रति आदर्शवादी प्रभावात्मक अनुशासन देखने को मिलता है। स्वामी जी छात्रों को दंडित करने में प्रवल विरोधी थे। वे उन्हें उनकी प्रकृति के अनुसार शिक्षा देने की बात कहते है। यहाँ स्वामी जी मुक्तात्मक अनुशासन का समर्थक मालूम पड़ते हैं। किन्तु जहाँ वे छात्र को गुरू की आज्ञा पालन एवं शीश नमन अनिवार्य बताते है और कहते है कि पहले आज्ञा का पालन करो, आज्ञा देना ासीखों, आज्ञा स्वयं आ जायेगा। पहले सेवक बनना सीखों, एक योग्य गुरू हो जाओंगे। स्वामी जी मनसा वाचा कर्मणा आत्मानुशासन के ही प्रबल समर्थक थे। इन का यह अनुशासन सामाजिक और वैयक्तिक कल्याण का प्रबल सहायक सिद्ध हो सकता है।

स्त्री-शिक्षा

स्वामी जी के समय में स्त्री-जाति की दशा अत्यन्त गिरी हुई थी शक्ति की साक्षात् देवी नारी की अवमानना उन्हें वर्दास्त नहीं हो सकी। उन्होंने नारी कल्याण का विगुल बजाया तथा बुलन्द आवाज में घोषणा की, स्मृतियाँ लिखकर तथा कठोर नियम बनाकर मनुष्यों ने स्त्रियों को मात्र मानव निर्माण की मशीनें बना डाला है। यदि मातृ रूपी माँ को नहीं उठाओगे तो तुम्हारे पास उन्नति का कोई रास्ता नहीं होगा। सभी राष्ट्र नारियों को सम्मान देकर ही महान बने है। उस देश एवं राष्ट्र को महान बनने की कोई आशा नहीं करनी चाहिए जहाँ नारी जाति का सम्मान नहीं होता और जहाँ नारियाँ शोकग्रस्त रहती है। अतः नारियों की उन्नति ही पहली आवश्यकता है।

इन्होंने घोषण की कि आज के युग की पुकार है कि माताएँ पवित्र और निर्भय बने। प्राचीन नारियों की परम्परा बनाये रखे तथा वीर पुत्रों को जन्म दें। स्वामी जी ने इस निमित्त नारी शिक्षा की महती आवश्यकता बतलाकर उन्हें सजग एवं विवेकी बनाने का वीणा उठाया। स्वामी जी ने शिक्षा के द्वारा देश और विदेश की नारियों के सर्वागीण विकास पर बल दिया। उन्होंने कहा कि - ''हमें ध्यान देना होगा कि नारियाँ शिक्षा पाकर आदर्श माताएँ बने और समय आते ही अपना गृहस्थ धर्म निभायें। ऐसी माताओं के बच्चे गुणों की दृष्टि से अच्छे बनेगें और अपनी माता का नाम ऊँचा उठायेगें।''

प्रौढ़ शिक्षा

प्रौढ़ शिक्षा स्वामी विवेकानन्द की जन-शिक्षा का एक अंग है। उन्होंने प्रौढ़ों की दशा सुधारने के लिए समाज सेवियों, सनयासियों तथा सरकार का ध्यान आकृष्ट किया था। उनका कहना था कि भारत झोपड़ियों में रहता है। इसलिए प्रत्येक शिक्षित नर-नारी का कर्तव्य है कि वह गांव-गांव में पहुँचकर सामाजिक सुधार और सामाजिक सेवा की ज्योति जगाये, दीन-हीन, अशिक्षित भारतीयों का मार्ग दर्शन करें तथा उन्हें शोषण, उत्पीड़न, मानसिक दक्षता और रूढ़ियों के चंगुल से निकाले। स्वामी जी प्रौढ़ शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार करने वाले लोगों को महात्मा और प्रौढ़ नर-नारियों को ईश्वर की संज्ञा दी है।

स्वामी जी प्रौढ़-शिक्षा में दृष्य-श्रव्य सामग्रियों को विशेष महत्व देते थे। उन्होंने उत्तम संस्कारों के विकास हेतु मातृभाषा के साथ ही साथ संस्कृत भाषा की शिक्षा पर भी पर्याप्त बल दिया है। वे अपने सहयोगियों एवं समाज सेवियों को सलाह देते है कि सायंकालीन बेला में कैमरा, ग्लोब और मानचित्र लेकर प्रशिक्षणार्थ जाओं। इस प्रकार की शिक्षा के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द के विचार अत्यन्त प्रभावकारी एवं व्यापक है।

राष्ट्रीय-शिक्षा

विवेकानन्द जी राष्ट्रीय शिक्षा के प्रबल पोषक थे। वे गॉधी जी के सच्चे अग्रदूत के रूप में राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में देखे जाते है। उनका विश्वास था कि मन, वाणी और कर्म से पूर्व भारतीय ही राष्ट्र-भारत माता की सेवा सच्ची भावना से कर सकता है। उन्होंने शिक्षा को राष्ट्रीय चरित्र एवं समृद्धि का मूल मानकर राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली पर बल दिया है। वे राष्ट्रीय शिक्षा प्रणा ली का प्रारम्भ बच्चे के स्थानीय वातावरण से करना आवश्यक मानते थे। धीरे-धीरे स्वामी जी बच चे को घर से गाँव-गाँव से नगर-नगर से समाज और समाज से सम्पूर्ण राष्ट्र से परिचित कराना चा हते थे। उनका विश्वास था कि उपर्युक्त ज्ञान हो जाने पर बड़ा होकर वह सम्पूर्ण मानवता का ज्ञान प्राप्त कर लेगा।

स्वामी जी बच्चे को पहले भारतीय, संस्कृति, रीति-रिवाज, सभ्यता, प्रथा एवं दर्शन से परिचित, कराने की बात करते है और अन्त में सम्पूर्ण विश्व की संस्कृति आदि की जानकारी की बात। वे अपनी संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ मानते है। तभी तो उनकी शिष्या सिस्टर निवेदता ने जब भारत में आकर भारतीयों की सेवा करने की इच्छा व्यक्त की थी तो स्वामी जी ने स्पष्ट कहा था कि तुम्हें अपने विचारों, अपनी आवश्यकताओं अपने चिन्तन और स्वभाव में हिन्दूत्व लाना होगा। तुम्हारा वाहय एवं आन्तरिक जीवन एक कट्टर ब्रहमचारिणी की भॉति होना आवश्यक है। यदि

तुम इसकी पर्याप्त इच्छा रखोगी तो तुम्हें सब विधियाँ स्वयं आ जायेगी। वस्तुतः स्वमी जी मानवता का प्रेम से, राष्ट्र एवं विश्व के साथ सम्बन्ध जोड़ना चाहते थे। इसी निमित्व उन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा पर विशेष बल दिया था। स्वामी जी सचमुच सम्पूर्ण मानवता की सेवा में आजीवन लगे रहे। उनकी कल्पना थी राष्ट्रीय अथवा मानीय शिक्षा परिवार से प्रारम्भ हो। जहाँ बच्चे अपने सगे सम्बन्धियों से प्रेम को विश्व प्रेम में परिवर्तित कर दे। इस प्रकार स्वामी जी ने भारतीय संस्कृति ज्ञान-विज्ञान, रीति-रिवाज एवं परम्पराओं के द्वारा राष्ट्रीय एवं विश्व-प्रेम स्थापित करने का प्रयास किया था।

धार्मिक-शिक्षा

स्वामी जी धार्मिक शिक्षा को आत्म साक्षात्कार का सर्वोत्तम साधन मानते थे। उनकी शिक्षा का केन्द्र बिन्दु धर्म ही है। उन्होंने धर्म के व्यापक एवं व्यवहारिक स्वरूप को स्वीकार किया हैं उन्हीं के शब्दों में - ''मैं धर्म को शिक्षा का आत्मा को मानता हूँ मैं धर्म का आशय अपनी अधिकतम् विचारधारा को व्यक्तिगत से नहीं लगाता। मेरा विचार है कि शिक्षक बच्चों में धर्म की शिक्षा प्रारम्भ करें वह इस शिक्षा को वैसे ही दे जैसे अन्य शिक्षाएं दी जाती है। वह उसमें धर्म का ऐसा विकास करें कि उसके जीवन के विकास के साथ-साथ वह पनपता ही रहे। वे धर्म को हृदय की अनुभूति मानते थे अतः धार्मिक शिक्षा का आशय उनकी आत्मानुभूति है। धर्म

साक्षात् ब्रहम है। एक अनुभूतिमूलक तत्व है, तथा हृदय में दैवी प्रकाश है। अतः ऐसे धर्म की प्राप्ति मंदिर मस्जिद, गिरजाघरों, धर्मग्रन्थों और अन्धविश्वासों द्वारा सम्भव नहीं है। अपितु, वह तो सद्आचरण, चारित्रिक, नैतिक, आध्यात्मिक गुणों, आत्मविश्वास और श्रद्धा द्वारा ही प्राप्त है।

स्वामी विवेकानन्द धर्म को असीम शक्ति मानते थे उनका विचार था कि धर्म एक तप और साधना हैं यह धर्मे में पुरूषत्व लाता है। इसीलिए धार्मिक - शिक्षा को अनवार्य बनाने की बात कही थी। धर्म का प्रचार भारत के कोने-कोने में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में किया था। स्वामी जी ने धार्मिक शिक्षा की व्यापकता को ध्यान में रखकर उनके पाठ्य-क्रम में विश्व के महान महापुरूषों एवं नारियों, भारतीय संस्कृति, विश्व-धर्म एवं मानवता आदि को समाहित करने की योजना बनायी थी। वे राम कृष्ण, ईसामसीह, माँ दुर्गा, बुद्ध, हनुमान, महावीर और गुरूदेव रामकृष्ण परमहंस के आदेशों और उनके त्याग, बलिदान, संयम, नियम तथा पराक्रम और वीरता का ज्ञान देकर बच्चों के हृदय को प्रशिक्षित करना चाहते है।

स्वामी जी की धार्मिक शिक्षा, व्यवहारिक सम्प्रदाय निरपेक्ष तथा मानव कल्याण की शिक्षा योजना है। जो पुस्तकीय ज्ञान के स्थान पर व्यवहारिकता और आचरण पर केन्द्रित है। सचमुच आज ऐसी ही शिक्षा की आवश्यकता है। स्वामी जी के निम्न वाक्य उनकी धार्मिक शिक्षा की व्यापकता को स्वतः सिद्ध करते है। -

"पुस्तकों से चिपटे रहने से मानव बुद्धि को ह्रास होता है। क्या ऐसा कहने से भी आधिक कोई अन्य अधार्मिकता हो सकती है कि ईश्वर इस अथवा उस पुस्तक में सीमित है, मनुष्य किस प्रकार ईश्वर को अनन्त कहने का साहस करता है और उसे छोटी से पुस्तक में भी बन्द कर देता है।"

अध्याय - 5

1. निष्कर्ष

2. सुझाव

3. सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

निष्कर्ष

समकालीन भारतीय शिक्षा दार्शनिकों में महात्मा गांधी तथा स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा सम्बन्धी विचारों का उनके जीवन काल में प्रचार-प्रसार जितना अधिक हुआ उतना प्रसार किसी अन्य समकालीन भारतीय शिक्षा दार्शनिक के विचारों का नहीं हुआ। दोनों शिक्षा दार्शनिकों के शिक्षा सम्बन्धी विचारों में काफी साम्यता पायी जाती है।

गॉधी जी ने शिक्षा का अभिप्राय आधुनिक विचार-धारा के अनुसार दिया है लेकिन उस पर अपनी निजी छाप भी दी है। वह शिक्षा को एक व्यापक एवं विस्तृत अर्थ में लेते है। क्योंकि शिक्षा संकीर्ण घेरे अथवा एकांगी ढंग से बढ़ने से नहीं होता है। गॉधी जी ने कहा है कि -''सच्ची शिक्षा वह है जो बालकों को अत्यधिक आत्मिक, बौद्धिक, शारीरिक क्षमताओं को उनके अन्दर से बाहर प्रकट करें और उत्तेजित करें।''

विवेकानन्द ने शिक्षा का अभिप्राय व्यापक रूप से ही लिया है। उनके अनुसार - ''व्यक्ति के अन्दर निहित पूर्णता का उद्घाटन ही शिक्षा है।'' स्वामी जी मनुष्य को जन्म से पूर्ण मानते थे। उनका कहना था कि व्यक्ति के अन्दर एक पूर्णता निहित है। उसको बाहर की ओर प्रकट करना ही शिक्षा है। वे तथ्यों के संकलन मात्र को शिक्षा नहीं मानते। अपितु उनके अनुसार शिक्षा का

तात्पर्य उस ज्ञान से है जो व्यक्ति को संकल्पशक्ति को विकसित करके अर्न्तनिहित दिव्य शक्तियों की जानकारी देती है।

इस प्रकार हम देखते है कि शिक्षा के अर्थ के सम्बन्ध में महात्मागांधी एवं स्वामी जी के विचारों में काफी साम्यता है। दोनों ने शिक्षा का अर्थ बालक की आन्तरिक शक्तियों के पूर्ण विकास में लगाया है।

महात्मा गांधी ने शिक्षा के उद्देश्यों में जीवकोपार्जन सम्बन्धी, उद्देश्य, सांस्कृतिक उद्देश्य सामन्जस्यपूर्ण विकास का उद्देश्य, नैतिक एवं चारित्रिक विकास के उद्देश्य मुक्ति का उद्देश्य का व्यापक वर्णन एवं समर्थन किया है स्वामी जी ने भी शिक्षा के उद्देश्यों में शारीरिक विकास का उद्देश्य मानसिक विकास व प्रतिभा जागरण का उद्देश्य तथा विश्वबन्धुत्व की भावना का उद्देश्य का वर्णन किया है। उद्देश्यों को देखने पर हमें ज्ञात होता है कि महात्मा गांधी एवं विवकानन्द के शिक्षा के उद्देश्यों में काफी सभ्यता है। दोनों के शिक्षा के उद्देश्य लगभग एक समान ही है।

पाठ्य-क्रम के सम्बन्ध में स्वामी जी के पाठ्यक्रम का कोई निश्चित संगठित स्वरूप प्रस्तुत नहीं किया है। हॉ यत्र-तत्र उनके व्याख्यानों से उसको निकाला गया है। इसलिए इनके पाठ्य-क्रम में यह संकेत नहीं मिलता कि किसे क्या-क्या और कितना पढ़ाया जाय। इसके विपरी त महात्मा गांधी ने शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न विषयों के अध्ययन के

लिए संकेत दिये है। गाँधी जी ने पाठ्यक्रम का संगठित रूप प्रस्तुत किया है तथा पाठ्यक्रम के स्पष्ट उल्लेख किया है कि क्या-क्या पढ़ाया जाय और क्या न पढ़ाया जाय। महात्मा गाँधी और विवेकानन्द दोनों अपने समय की प्रचलित शिक्षा प्राणी को एकांगी मानते है। दोनों का विचार था कि इसमें परिवर्तन लाना जरूरी है। इसलिए अपने-अपने शिक्षा सम्बन्धित विचारों को प्रस्तुत कि या है। गाँधी जी आजीविका को प्रमुख मानते थे।

गाँधी जी ने शिक्षण विधि के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख शिक्षण विधियॉ, क्रिया विधि, अनुकरण विधि, मौखिक विधि सहयोगी विधि श्रवण-मनन तथा यह सम्बन्ध विधि का वर्णन किया है। विवे किया है। विवेकानन्द जी ने भी अनेक विधियों का उल्लेख किया है यथा-ध्यान केन्द्रीकरण पद्धति, मौखिक पद्धति, निर्देशन एवं परामर्श पद्धति प्रदर्शन एवं प्रयोग पद्धति, भ्रमण-पद्धति तथा क्रिया-पद्धति।

उपरोक्त शिक्षण पद्धतियों को देखने पर यह ज्ञात होता है कि दोनों शिक्षण पद्धतियों को दे खेन पर यह ज्ञात होता है कि दोनों शिक्षण पद्धतियों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों शिक्षा मनीषियों की शिक्षण पद्धतियॉ लगभग समान है। स्वामी जी ने ध्यान केन्द्रीकरण पर विशेष बल दिया है तो गांधी जी ने क्रिया-पद्धति पर विशेष जोर दिया है।

स्वामी जी गुरू-गृह प्रणाली के प्रबल समर्थक थे। स्वामी जी के अनुसार सच्चा गुरू वह है जो अपनी सम्पूर्ण शक्ति शिष्य की प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने में लगा दे। ये अध्यापक को एक

माली के रूप में देखना चाहते थे। इनका गुरू या अध्यापक एक आदर्शवादी अध्यापक के रूप में प्रतिष्ठत है।

गांधी जी का भी दृष्टिकोण शिक्षक, के सम्बन्ध में आदर्शवादी था। वह शिक्षक को सत्य, अहिंसा, प्रेम, न्याय, सहिष्णुता, परिश्रम आदि गुणों से विभूषित देखना चाहते थे। इस प्रकार हम देखते है कि दोनों विचारकों के शिक्षक के गुणों में काफी साम्यता हैं

विद्यालय के सम्बन्ध में गांधी जी तथा सवामीजीके विचारों में थोड़ा सा अन्तर प्रतीत होता है। स्वामी जी लगभग वैदिक कालीन गुरू प्रणाली का समर्थन करते है। शिष्य गुरू के आश्रम में ही रहेगा। जबकि गांधी जी विद्यालय को प्रकृति की गोद में गांवों के आस-पास की बात की है। बेसिक शिक्षा प्रणाली तथा स्वामी जी ने गुरूकुल शिक्षा प्रणाली का समर्थन किया है। गांधी जी ने हस्त कौशल के माध्यम से समस्त शिक्षा प्रदान करने की बात की है। जबकि स्वामी जी ने शिक्षालय के सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं कही है।

स्वामी विवेकानन्द गुरू एवं शिष्य दोनों में आत्मानुशासन को आवश्यक माना है। उनका विचार है कि गुरू स्वयं अनुशासित रहे तभी उनके व्यवहार एवं आचरण से प्रभावित होकर छात्र भी अनुशासित होंगे। स्वामी जी मुक्तात्मक अनुशासन के समर्थक थे। वे छात्रों को दण्डित करने के प्रबल विरोधी थे। अनुशासन के सम्बन्ध में गांध जी का विचार स्वामी जी के विचार से काफी मेल खाता है। गाँधी जी का विचार था कि पहले गुरू अनुशासित रहे तो शिष्य भी अनुशासित रहे

गा। गांधी जी भी आत्मानुशासन के पक्ष में थे। जो आत्मिक पाश्चाताप और सुधार से सम्भव है। गांधी जी ने बालकों के ऊपर दमनात्मक अनुशासन का विरोध किया था। उनके अनुसार आन्तरिक अनुशासन या आत्मानुशासन स्थायी होता हैं दण्डात्मक अनुशासन क्षणिक होता है। यह अनुशासन तभी तक रहता है जब तक कि दण्ड का भय रहता है।

स्त्री-शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, जन-शिक्षा, धर्म-शिक्षा तथा राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में महात्मा गांधी एवंस्वामी जी के विचार लगभग समान ही है। दोनों ने स्त्री शिक्षा, प्रौढ़-शिक्षा, जन-शिक्षा, धर्म-शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा की अति आवश्यकता महसूस की है। दोनों का विचार था कि परिवार, समाज, राष्ट्र तथा विश्व की प्रगति के लिए इनका प्रचार-प्रसार तथा उन्नति करना सभी के लिए आवश्यक है।

गांधी दर्शन तथा विवेकानन्द जी का आज विश्व स्तर पर प्रचार-प्रसार तथा महत्व है। सत्य अहिंसा, आत्मा प्रेम में दोनों का पूर्ण विश्वास था। दोनों ने शिक्षा के द्वारा सत्य, अहिंसा तथा प्रेम के सन्देश को समाज, राष्ट्र तथा विश्व स्तर पर प्रसारित एवं प्रचारित किया। दोनों मनावता वाद के प्रबल समर्थक थे। मनुष्य, मनुष्य को समान मानने में दोनें का पूर्ण विश्वास था। दोनों ने संसार को विश्व-बन्धुत्व का पाठ पढ़ाया।

शिक्षा के सामाजिक पक्ष पर विचारते हुए दोनों विभूतियों ने अपनी शिक्षा योजना में सामाजिक पहलू को सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है। दोनों का प्रबल विश्वास है कि व्यक्ति का सर्वांगीण विकास समाज में रहकर ही संभव हैं

भावी अध्ययन के लिए सुझाव

वर्तमान अध्ययन में महात्मा गांधी जी एवं स्वामी विवेकानन्द जी के शैक्षिक विचारों का म हत्व प्रस्तुत हैं समय एवं साधन की सीमाओं के कारण यह अध्ययन सीमित है। यह तो सूरज को दीपक दिखाने के मात्र है। अतः इनके विचारों का और अधिक अध्ययन होना चाहिए। शोधकर्त्री द्वारा चयन की गयी समस्या के आधार पर निम्नलिखित क्षेत्र में अध्ययन किये जा सकते है-

1- भारतीय दर्शन एवं पाश्चात्य दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए।

2- गाँधी जी विवेकानन्द तथा प्लेटों के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाना चाहिए।

3- महात्मा गाँधी एवं स्वामी दयानन्द सरस्वती के शैक्षिक विचारों का अध्ययन होना चाहिए।

4- गाँधी स्वामी राम तीर्थ एवं सन्त विनोवाभावे के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन होना चाहिए।

उपरोक्त सभी अध्ययन भारतीय शिक्षकों की जिज्ञासा को तो तृप्त करेगा ही साथ ही पाश्चात्य शिक्षक भी लाभान्वित होंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1- डा0 राम शकल पाण्डेय - शिक्षादर्शन, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा।

2- डा0 सरजू प्रसाद चौबे - भारतीय एवं पाश्चात्य शिक्षाशास्त्री, आगरा

3- लक्ष्मी नरायन गुप्ता - महान भारतीय शिक्षा शास्त्री, कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद।

4- हुमायूँ कवीर - भारतीय शिक्षा दर्शन, राजकमल प्रकाशन नयी दिल्ली।

5- डा0 रामनाथ वर्मा - समकालीन भारतीय शिक्षा दार्शनिक मंदिर अहमदाबाद।

6- मोहनदास करमचन्द्रगांधी - सच्ची शिक्षा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।

7- मोहनदास करमचन्द्र गाँधी - गांधी शिक्षा, सस्ता साहित्य मण्डल, नयी दिल्ली।

8- डा0 राम शकल पाण्डये - भारतीय शिक्षा के विभिन्न आयाम

9- स्वामी विवेकानन्द - ज्ञानयोग राम कृष्ण मठ धन्तोली नागपुर।

10- व्योम स्वरूपानन्द अध्यक्ष - विवेकानन्द के सनिध्य में, श्रीराम
अद्वैत आश्रम कृष्ण मठ धन्तोली नागपुर।

11- मोहनदास करम चन्द - शिक्षा की समस्या, नवजीवन
गांधी प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।

12- स्वामी अपूर्णानन्द अध्यक्ष - युग प्रवर्तक, विवेकानन्द राम कृष्ण
अद्वैत आश्रम मठ धन्तोली नागपुर।

13- सत्येन्द्र नाथ मजूमदार - विवेकानन्द चरित्र, व्योमसवरूपानन्द
रामकृष्ण मठ, धन्तोली नागपुर।